वर्ष ४०] * * * [अङ्क ८

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद २०२३, अगस्त १९६६

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५ पै०
विदेशमें ५६ पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

नटराजका ताण्डव-नृत्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
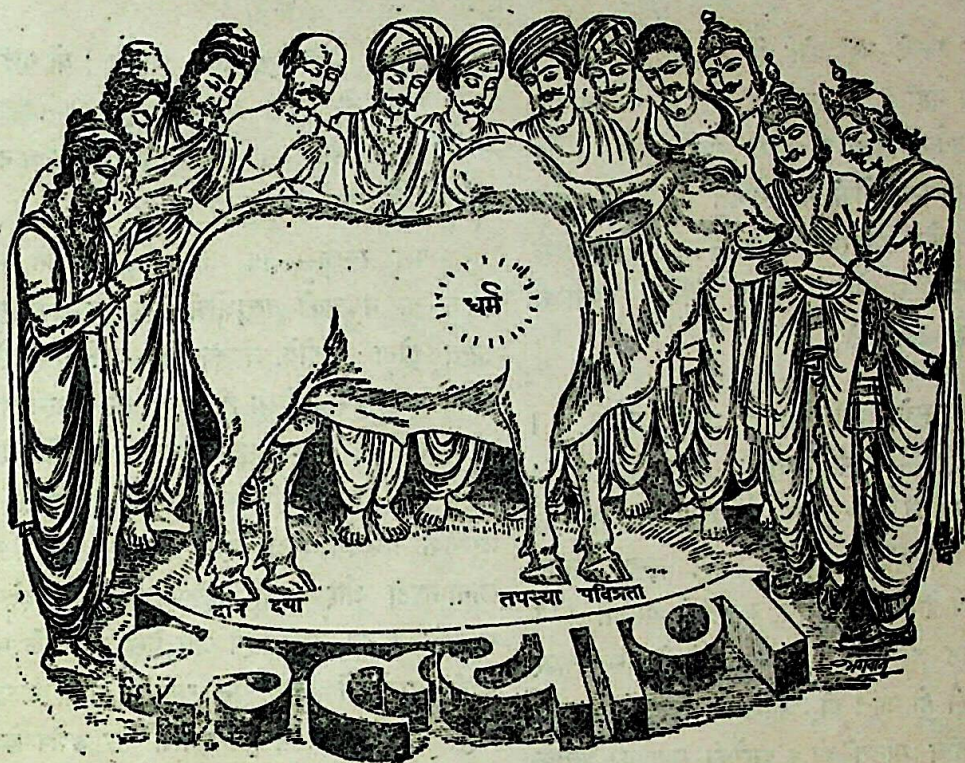
लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिभिर्विट्शूद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्धर्मो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० } गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०२३, अगस्त १९६६ { संख्या ८
पूर्ण संख्या ४७७

नटराजका ताण्डव नृत्य

नाचत नटराज रुचिर बाजत डमरू कर ।
जटाजूट सोहत सिर भूषन भुजंगधर ॥
आसुतोष सदासिव भव रुद्र प्रलयंकर ।
देवपति महादेव अखिल बिस्वदुःखहर ॥
भूतनाथ अंग अंग राजत बिभूति वर ।
कामरिपु कामरूप काम-सकल-सिद्धिकर ॥

याद रक्खो—यहाँ कोई भी वस्तु, प्राणी, परिस्थिति, पदार्थ ऐसा नहीं है, जो तुम्हारा 'मेरा' हो—जो तुम्हारी ममताको सार्थक करता हो। यह महामोह है जो तुम सांसारिक प्राणि-पदार्थोंको मेरा मानते हो, उनमें ममता रखते हो और संसारकी अधिक-से-अधिक वस्तुओंको 'मेरी' बनाना चाहते हो—उनपर मिथ्या 'ममता'की मुहर लगाना चाहते हो।

याद रक्खो—जहाँ 'मेरा' है, वहीं 'पराया' है। कोई तुम्हारी ममताकी वस्तु है, तो कोई दूसरोंकी। अपनी ममताकी वस्तुओंमें तुम्हारी आसक्ति है, दूसरोंकी ममताकी वस्तुओंके प्रति तुम्हारे मनमें उपेक्षा है या द्वेष है। इसीसे ममताकी वस्तुके छिन जानेपर, नष्ट हो जानेपर या नष्ट होनेकी सम्भावनापर ही तुम दुखी हो जाते हो, अपनेको अत्यन्त संकटग्रस्त और भाग्यहीन मानते हो। दूसरेकी ममताकी वस्तुके नाशपर तुम या तो उपेक्षा करते हो—या सुखी होते हो। राग-द्वेषका यही परिणाम है। कुछ प्राणि-पदार्थोंमें ममता होनेपर समता नष्ट हो जाती है और फलतः राग-द्वेष पुष्ट हो जाते हैं, जो नये-नये मानसिक और शारीरिक पापों तथा दुःखोंके कारण होते हैं।

याद रक्खो—तुम्हारे पास जो कुछ है, या जो कुछ तुम्हें मिलनेवाला है, सब भगवान्‌का है। यह समझकर उसपर निजी ममता न करके भगवान्‌की वस्तुकी दृष्टिसे उसकी सँभाल करो और उसपर अपना स्वत्व न मानकर उसे यथायोग्य भगवान्‌की सेवामें लगाते रहो। इससे, 'जैसा बीज बोया जाता है, उसीके अनुरूप अनन्तगुने फल होते हैं' इस बीज-फल-न्यायके अनुसार तुम्हें बदलेमें बहुत कुछ मिल जायगा। यों यदि सब करने लगेंगे तो सबके अभावकी पूर्ति अपने-आप हो जायगी। साथ ही, भगवान्‌की वस्तुको 'मेरी' माननेका जो दोष है, उससे बचाव हो सकेगा।

याद रक्खो—तुम जबतक वस्तुओंमें ममता रखकर या ममताकी वस्तुओंकी संख्या बढ़ाकर सुखी-शान्त होना चाहोगे, तबतक सुख-शान्ति तुमसे दूर रहेंगे; क्योंकि सभी ऐसा ही चाहेंगे तो संसारमें दूसरोंकी वस्तुओंको मनुष्य सदा ललचायी आँखोंसे देखता रहेगा और उन्हें हथियाकर उनपर ममताकी छाप लगानेके प्रयत्नमें संलग्न होगा। इससे सदा सर्वत्र छीना-झपटी और फलतः संघर्ष-संहार होता रहेगा। संसारके मानव दुखी रहेंगे और ऐसा करनेवाले मानव प्राणी परलोकमें और पुनर्जन्ममें भी नाना प्रकारकी असुरी योनियोंके, नरक-यन्त्रणाओंके और अशेष क्लेशोंके भागी होंगे ही।

याद रक्खो—जो मानव इस प्रकार ममता, राग-द्वेष, उनके फलस्वरूप पाप तथा दुःखभोगकी परम्परामें जीवन बिताता रहेगा, वह मानवजीवनके एकमात्र परम तथा चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित रह जायगा, जिसकी प्राप्ति मानवेतर योनियोंमें होती ही नहीं। अतएव संसारके किसी भी प्राणी, पदार्थ, वस्तु, परिस्थितिमें ममता न कर नित्य सत्य सनातन सर्वाधार भगवान्‌के श्रीचरणोंमें ममता करो। फिर सर्वत्र समता हो जायगी। राग-द्वेष रहेंगे नहीं। पाप होंगे नहीं। दुःख तथा नरकोंसे एवं नारकी योनियोंसे छुटकारा मिला रहेगा और मानव-जीवनकी चरम-सफलतारूप भगवत्प्राप्ति भगवत्कृपासे हो जायगी।

'शिव'

गो-महिमा और गोरक्षाकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य-संदेश)

गोरक्षा हिंदूधर्मका एक प्रधान अङ्ग माना गया है। प्रायः प्रत्येक हिंदू गौको माता कहकर पुकारता है और माताके समान ही उसका आदर करता है। जिस प्रकार कोई भी पुत्र अपनी माताके प्रति किये गये अत्याचारको सहन नहीं करेगा, उसी प्रकार एक आस्तिक और सच्चा हिंदू गोमाताके प्रति निर्दयताके व्यवहारको नहीं सहेगा; गोहिंसाकी तो वह कल्पना भी नहीं सह सकता। गौके प्राण बचानेके लिये वह अपने प्राणोंकी आहुति दे देगा; किंतु उसका बाल भी बाँका नहीं होने देगा। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके पूर्वज महाराज दिलीपके चरित्रसे सभी लोग परिचित हैं। उन्होंने अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठकी बछिया नन्दिनीकी रक्षाके लिये सिंहको अपना शरीर अर्पण कर दिया, किंतु जीते-जी उसकी हिंसा न होने दी। पाण्डवशिरोमणि अर्जुनने गोरक्षाके लिये बारह वर्षोंका निर्वासन स्वीकार किया।

परंतु हाय! वे दिन अब चले गये। हिंदूजाति आज दुर्बल हो गयी है। हम अपनी मानस स्वतन्त्रता, अपना पुरुषत्व, अपनी धर्मप्राणता, ईश्वर और ईश्वरीय कानूनमें विश्वास, शास्त्रोंके प्रति आदरबुद्धि, विचार-स्वातन्त्र्य, अपनी संस्कृति एवं मर्यादाके प्रति आस्था—सब कुछ खो बैठे हैं। आज हम आपसकी फूट एवं कलहके कारण छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। हम अपनी संस्कृति एवं धर्मपर किये गये प्रहारों एवं आक्रमणोंको व्यर्थ करनेके लिये संघटित नहीं हो सकते। हम अपनी जीवनीशक्ति खो बैठे हैं। मूक पशुओंकी भाँति दूसरोंके द्वारा हाँके जा रहे हैं। शारीरिक गुलामी ही नहीं, अपितु मानसिक गुलामीके भी शिकार हो रहे हैं। आज हम सभी बातोंपर पाश्चात्त्य दृष्टिकोणसे ही विचार करने लगे हैं। यही कारण है कि हमारी इस पवित्र भूमिमें प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें गाय और बैल काटे जाते हैं और हम इसके विरोधमें अँगुलीतक नहीं उठाते। आज हम दिलीप और अर्जुनके इतिहास केवल पढ़ते और सुनते हैं। उनसे हमारी नसोंमें जोश नहीं भरता। हमारी नपुंसकता सचमुच दयनीय है!

× × ×

भारत-जैसे कृषिप्रधान देशमें आर्थिक दृष्टिसे भी गायका महत्त्व स्पष्ट ही है। जिन लोगोंने हमारे ग्रामीण जीवनका विशेष मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया है, उन सबने एक स्वरसे हमारे जीवनके लिये गौकी परमावश्यकता बतायी है। गोधन ही हमारा प्रधान बल है। गोधनकी उपेक्षा करके हम जीवित नहीं रह सकते। अतः हमारे गोवंशकी संख्या एवं गुणोंकी दृष्टिसे जो भयानक ह्रास हो रहा है, उसका बहुत शीघ्र प्रतीकार होना चाहिये और हमारी गौओंकी दशाको सुधारने, उनकी नस्लकी उन्नति करने और उनका दूध बढ़ाने तथा इस प्रकार देशके दुग्धोत्पादनमें वृद्धि करनेका भी पूरा प्रयत्न करना चाहिये। गायों, बछड़ों एवं बैलोंका वध रोकने तथा उनपर किये जानेवाले अत्याचारोंको बंद करनेके लिये देशभरमें कानून बनना आवश्यक है। विधर्मियोंको भी गौकी परमोपयोगिता बतलाकर गो-जातिके प्रति उनकी सहानुभूति एवं सद्भावका अर्जन करना चाहिये। जिस देशमें कभी दूध और दहीका पानीकी तरह बाहुल्य था, उस देशमें आज असली दूध मिलनेमें कठिनता हो रही है—यह कैसा आश्चर्य है!

× × ×

यदि समय रहते भारतवासी सावधान नहीं होंगे, इसी तरह गोधनकी उपेक्षा करते रहेंगे तथा गौओंके

बढ़ते हुए ह्रासको रोकनेकी चेष्टा नहीं करेंगे तो भविष्य और भी भयानक हो सकता है। उस समय कोई उपाय करना भी कठिन हो जायगा, इसलिये विचारवान् मनुष्योंको चाहिये कि वे पहलेसे ही सावधान हो जायँ। खासकर प्रत्येक हिंदूके लिये तो इस समय यह एक प्रधान कर्त्तव्य हो गया है कि वह इस ओर ध्यान दे और सब प्रकारसे गौओंकी रक्षाके लिये चेष्टा करे।

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिगराम)

जीवनका परम पुरुषार्थ

[एक महात्माका प्रसाद]

(संकलयिता—श्री'माधव')

स्नेहकी माँग प्राणिमात्रको रहती है, क्योंकि स्नेहके बिना जीवनमें व्यापकता नहीं आती। सच तो यह है कि हमारा निर्माण भी किसीके स्नेहसे और उदारतासे ही हुआ है। अतः स्नेह एवं उदारतासे हमारी जातीय एकता है। जिससे हमारी जातीय एकता है, हम उससे विमुख हो गये हैं, दूर नहीं। विमुखता अपना ही बनाया हुआ दोष है किसी औरका नहीं। जब हम अपने बनाये हुए दोषका त्याग कर देंगे, तब हमारा समस्त जीवन विवेक और प्रेमसे परिपूर्ण हो जायगा। विवेकपूर्वक हम अनित्य जीवनसे विमुख होकर नित्य-जीवन प्राप्त कर सकते हैं। प्रेमी होकर प्रेमास्पदको रस प्रदान कर सकते हैं और प्राप्त बलके सदुपयोगसे उत्कृष्ट भोग भी प्राप्त हो सकते हैं। परंतु भोगोंकी प्राप्ति किसी भी विवेकी तथा प्रेमीको अभीष्ट नहीं है; क्योंकि भोगका परिणाम रोग तथा शोक है। अतः भोगप्राप्ति विवेकयुक्त जीवनका उद्देश्य नहीं है। विवेकयुक्त जीवनका उद्देश्य तो केवल कामनाओंकी निवृत्ति, जिज्ञासाकी पूर्ति और प्रेमकी प्राप्ति ही हो सकता है। कामनाओंकी निवृत्तिमें पूर्ण योग और चिरशान्ति तथा जिज्ञासाकी पूर्तिमें अमरत्वकी प्राप्ति होती है। परंतु जिसे भोग अभीष्ट नहीं है, उसे ही नित्य-योग और अमरत्व प्राप्त होता है। जो अमरत्वकी भी लालसा नहीं रखता, उसे प्रेमकी प्राप्ति होती है।

पुण्यकर्म आदिसे उत्कृष्ट भोग और विवेकसे अमरत्व प्राप्त हो सकते हैं। कर्म करनेकी सामर्थ्य और विवेक तो अनन्तकी अहैतुकी कृपासे स्वतः प्राप्त है; परंतु प्रेमप्राप्तिके लिये तो हमें उन अनन्तके समर्पित होना पड़ेगा। उसके लिये हमें उनकी दी हुई सामर्थ्य, योग्यता आदिको केवल उन्हें ही समर्पित करना होगा। जिस प्रकार शिशु माँकी उपार्जित वस्तुओंको माँसे उत्पन्न किये हुए हाथोंके द्वारा ही जब माँके भेंट कर देता है तब माँ प्रसन्न हो जाती है। बेचारे बालकके पास अपनी कोई वस्तु नहीं है, सब कुछ माँसे ही मिला है। उसी प्रकार हमें भी सब कुछ उन अनन्तकी अहैतुकी कृपासे ही मिला है। अतः हमें उनकी दी हुई प्रत्येक वस्तु, योग्यता और सामर्थ्यको उन्हींसे प्राप्त विवेकपूर्वक उन्हींको भेंट कर देना है तथा उनके विश्वास, प्रेम और सम्बन्ध-को ही अपना अस्तित्व मानना है। ऐसा होते ही हमें जो प्रेम प्राप्त होता है, उसी प्राप्त प्रेमसे हम उन अनन्तको रस प्रदान कर सकते हैं। जिस प्रकार माँके द्वारा प्राप्त स्नेहसे ही शिशु माँको रस प्रदान करता है, उसी प्रकार हम शिशुकी भाँति उन अनन्तके दिये हुए प्रेमसे ही उन्हें आह्लादित कर सकते हैं। कारण कि विवेकयुक्त जीवनका निर्माण उनकी अनिर्वचनीय, अनुपम और अहैतुकी कृपाशक्तिने उन्हें प्रेम प्रदान करनेके लिये ही किया है। इस दृष्टिसे जीवनका मुख्य

उद्देश्य प्रेम-प्राप्ति है। वह प्रेम तभी प्राप्त होगा जब हम उनकी कृपाका आश्रय लेकर अपनेको उन्हींके समर्पित कर दें। इस बातके लिये चिन्तित न हों कि 'हम कैसे हैं'? जैसे भी हैं उनके हैं। वे जैसे भी हैं हमारे हैं। उनकी कृपा स्वयं हमें उनसे प्रेम करनेके योग्य बना लेगी। हमें तो केवल उनकी कृपाको अपना लेना है। उनकी गुणमयी माया तो प्राणियोंको मोहित करती है; परंतु उनकी कृपाशक्ति स्वयं उन शक्तिमान्‌को मोहित कर देती है। अतः उनकी कृपाका आश्रय लेकर जो एक बार यह कह देता है कि 'मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो' बस, वे सदाके लिये उसके हो जाते हैं। यही इस जीवनका अन्तिम पुरुषार्थ है।

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क पृष्ठ १०३५ से आगे]

३४—'मैं आत्मा हूँ'—इस बातमें आपको शङ्का होती हो तो विचार दृढ़ करके बताइये कि यदि आप आत्मा नहीं तो क्या हैं? आप हैं—इसमें तो कोई शङ्का नहीं है? मैं हूँ—यह अनुभव सबको होता है। 'मैं नहीं हूँ'—ऐसा कोई नहीं कहता। इस जगत्‌में दो वस्तुएँ हैं। एक आत्मा है—जो नित्य, अविकारी और अविनाशी है और दूसरा अनात्मा—जो दृश्य है, विकारी है और विनाशी है। किसी भी आग्रहसे मुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक बुद्धिसे विचार करके देखिये तो आपको ज्ञात होगा कि दृश्य जो विकारी और विनाशी है, वह 'मैं' नहीं हूँ। बल्कि मैं द्रष्टा हूँ। आत्मा द्रष्टा है और जगत् दृश्य है। आत्मा द्रष्टा है और शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि दृश्य है। आत्मा इनका अनुभव करता है, आत्माका अनुभव ये नहीं कर सकते।

३५—यह तत्त्व सत्य है, पर जबतक यह बात समझमें नहीं आती, तबतक उपासना करता रहे। भक्तिके द्वारा चित्त शुद्ध हुए बिना करोड़ों उपाय करनेपर भी चित्त इस बातको स्वीकार नहीं करता। अतएव किसी-न-किसी सगुण परमात्माकी निष्काम भावसे भक्ति करे, वैसा करनेपर चित्त-शुद्धि होकर बुद्धिमें स्वयमेव आत्मज्ञानकी स्फूर्ति होगी। वैराग्य और ज्ञान—ये दो निष्काम भक्तिके फल हैं। निष्काम भक्ति करते रहनेसे वैराग्य और आत्मज्ञान स्वयं ही फलित होगा। इसके लिये अधीर होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कोई क्रिया बाँझ नहीं होती। सकाम भक्ति इच्छित फल प्रदान करती है और निष्काम भक्ति आत्मज्ञान और वैराग्य प्रदान करती है। इन दोनोंकी प्राप्ति जबतक न हो तबतक लगे रहना जरूरी है। भक्ति जैसे-जैसे बढ़ती जाय, वैसे-वैसे निष्काम होता जाय तब ज्ञान और वैराग्यका प्रादुर्भाव होगा और यदि ये दोनों प्रकट न हों तो निश्चयपूर्वक जान ले कि भक्ति करनेवालेके चित्तमें अवश्य कोई-न-कोई भोग-कामना या वासना भरी है।

३६—इस जगत्‌के उत्पन्न होनेके पहले एक परमात्मा था। उसके सिवा कोई दूसरा न था। उनकी अपनी माया-शक्तिसे यह दृश्य-जगत् संकल्पमात्रसे बन गया। दूसरी वस्तु न होनेके कारण या तो वह स्वयं जगत्‌रूप हो गया अथवा मायावीके खेलके समान इस सम्पूर्ण जगत्‌का व्यवहार खड़ा हो गया है, जो असत् है। अतएव या तो जगत्‌को मिथ्या मायामय मानो अथवा जगत्‌को परमात्मारूप मानो—इन दोनोंके सिवा तीसरा मार्ग नहीं है। तुम्हारी बुद्धिमें जो जँचे उसे मानो।

३७—तुमको यह शङ्का होती हो कि तुम आत्मा नहीं, जीव हो, तो शरीरमें जीव नामकी कोई वस्तु जान नहीं पड़ती। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्राण—ये शरीरसे क्रिया करते हैं और ये भी परमात्माके सामीप्यसे अपना-अपना काम करनेमें शक्तिमान् होते हैं; प्राणीमात्रके शरीरमें परमात्मा तो हैं ही। परमात्मा न हों तो आँखें देख न सकें, कान सुन न सकें, पैर चल न सकें, हाथ लेने-देनेका काम न कर सकें, मन संकल्प न कर सके, बुद्धि निश्चय न कर सके और प्राणका श्वासोच्छ्वास न चले। सबके हृदयमें परमात्मा विराजते हैं। उनकी सत्तासे यह सब चलता है, ब्रह्माण्डकी प्रत्येक क्रिया उनकी सत्तासे होती है। सबके हृदयमें आत्मारूपमें वही बसे हैं। उनके सिवा जीव नामकी दूसरी कोई चीज

नहीं है। शास्त्र कहते हैं कि बुद्धिमें आत्मा या परमात्माका जो प्रतिबिम्ब है, वही जीव है अथवा वही चिदाभास कहलाता है। यह प्रतिबिम्ब कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, स्वतन्त्र वस्तु तो बिम्ब है। पानी या दर्पणमें अपनी छाया पड़ती है, यह छाया कोई व्यक्ति नहीं। छाया अपने बिम्बसे पृथक् व्यवहार नहीं कर सकती। छाया आभासमात्र है, सच्चा तो बिम्ब या व्यक्ति है। इसी प्रकार शरीरमें सच्चा तो आत्मा या परमात्मा ही है तथा जीव अथवा चिदाभास, यह कोई भी सत्य वस्तु नहीं है। अतएव जीव सत्य नहीं है। बल्कि आत्मा सत्य है और वह आत्मा तुम हो। प्रत्येक प्राणीके अन्तःकरणमें परमात्मा ही आत्मारूपमें विराज रहा है। तुम आत्मा हो, यह निश्चय है। यह तुरंत समझमें नहीं आता, परंतु निष्काम भावसे भगवान्‌की भक्ति करनेपर भगवान्‌की दयासे विचार करते-करते यह सत्य समझमें आ जायगा।

३८—तुमको यह सत्य जान पड़े या न जान पड़े, परंतु व्यवहारमें इतना तो करो ही, जिसके आचरणसे तुम और तुमसे दूसरे सुखी हों और तुमको स्वयं आत्मदर्शन हो। 'आत्मा अपने और प्राणीमात्रके हृदयमें विराज रहा है। सबका आत्मा एक है, इसलिये किसीका अपमान न करो और किसीको अपनेसे तुच्छ न समझो, किसीको अप्रिय बात न कहो, किसीको धोखा मत दो तथा किसीके साथ कपटव्यवहार न करो।'

३९—'मैं आत्मा हूँ और आत्माका सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप है और वही मेरा स्वरूप है। इसलिये आनन्द या सुखके लिये मुझे कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकारके विचारसे ऐसा दृढ़ निश्चय करके अपने सुख या आनन्दके लिये अन्य व्यक्ति या पदार्थकी इच्छा त्याग दो।

४०—शरीरके व्यवहार और आत्माके व्यवहारको अलग कर दो। अर्थात् स्वयं आत्मारूप रहकर शरीरसे शरीरके सारे आनेवाले व्यवहारोंको करो। जैसे नाटकमें राजा बना हुआ पात्र भीतरसे जानता है कि मैं राजा नहीं हूँ, बल्कि वेतनभोगी अभिनेता (नौकर) हूँ, तथा भीतरसे जानते और समझते हुए राजाका अभिनय करता है, उसी प्रकार हम अंदर आत्मा हैं, परंतु शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि नहीं हैं—ऐसा जानते हुए शरीरकी प्रकृतिके अनुसार अंदर समत्वयुक्त रहकर, बिना हर्ष-शोकके, नाटकके खेलके समान सारा व्यवहार करो। यह सहज ही सिद्ध नहीं होता। एक बार पढ़ने और जान लेनेसे तत्त्व गलेमें नहीं उतरता, बल्कि सतत इसका अभ्यास करना पड़ेगा। बहुत दिनोंसे और अनेक जन्मसे यह भूल हो गयी है। इस भूलको दूर करनेके लिये परमात्माकी भक्ति, सत्सङ्ग, विचार और वैराग्यके निरन्तर अभ्यासकी आवश्यकता है। इनके बिना किये दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसलिये मन लगाकर करते रहना चाहिये।

४१—यह जगत् परमात्माका एक नाटक है। इसमें परमात्मा स्वयं विभिन्न शरीर धारण करके अनेक खेल खेल रहे हैं। सबको अपना-अपना अभिनय करना है। परमात्मा विभिन्न शरीरोंमें आत्मारूपमें विराजमान होकर खेल कर रहे हैं। यह खेल इतना विचित्र है कि इसमें आत्मा अपने रूपको भूलकर जिस वेषमें अभिनय करता है, उस वेषके रूपमें अपनेको मान बैठा और अपने असली स्वरूपको भूल गया है। स्वयं अभिनयकी एकतानतामें भूल गया है, इसको अपने ही विचारसे मूलस्वरूपको याद दिलाना है। मूलस्वरूप याद करके अभिनय करनेसे अभिनयका सुख-दुःख उसको नहीं होगा। यही भेद है और यह बड़ा भेद है।

४२—जैसे नाटकमें अभिनय करनेवाला पुरुष स्त्री बनता है, रोता है, हँसता है, अनेकों प्रकारके अच्छे-बुरे दीखनेवाले काम करता है और सब कुछ करते हुए अंदरसे जानता है कि मैं स्त्री नहीं हूँ, बल्कि मैं वेतन-भोगी पुरुष पात्र हूँ। इससे वह सब कर्म करते हुए उनके पाप-पुण्यसे लिप्त नहीं होता; क्योंकि उसको सदा अपने मूलस्वरूपका भान होता रहता है। वह 'मैं आत्मा हूँ' यह सतत भान रखते हुए शरीरकी प्रकृतिके अनुसार स्वकर्मरूपी अभिनय करता रहे तो पाप-पुण्यका भागी नहीं होता और सदा मुक्त ही रहता है।

४३—प्राणीमात्रके शरीरमें परमात्मा बसते हैं तथा परमात्मा सर्वत्र हैं। जैसे पवन और आकाश सर्वत्र है, उसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र हैं; परंतु श्रद्धासे वे प्रकट होते हैं। परमात्माको प्रकट करनेमें एक श्रद्धापूर्वक चिन्तन ही कारण बनता है।

४४—इस जगत्में जो दीखता है, सुनायी देता है या अनुभवमें आता है, वह सब संकल्पसे हुआ है। किसी-न-किसी संकल्पसे बना है। तपसे संकल्पशक्ति

बलवान् होती है । आदिमें परमात्माने संकल्पशक्तिसे सृष्टि की और वह उत्तरोत्तर संकल्पशक्तिसे बढ़ती गयी । इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् संकल्परूप है, सत्य नहीं । क्षणिक है और विकारी तथा विनाशी है और जगत्के अधिष्ठानरूपमें रहनेवाला आत्मा सत्य, अविकारी, अविनाशी, एक और अखण्ड है ।

४५—सौभरि ऋषि यमुनाके जलमें रहकर तप करते थे । वहाँ उन्होंने मछलियोंको रति करते देखा, उस दृष्टि-संगके दोषसे उनको वृद्धावस्थामें भी तप छोड़कर स्त्री करनेकी इच्छा हुई और उन्होंने राजाकी पचास कन्याओंको स्वयं पचास रूप धारण करके ब्याह लिया । अर्थात् एक-एक कन्याको एक-एक ऋषिने ब्याहा । अपने तपकी सिद्धिके प्रभावसे एक सौभरिसे पचास सौभरि हो गये और गृहस्थाश्रम करने लगे । फिर एक परमात्मा अनेक रूप होकर इस संसारको चलाते हैं, तो इसमें आपको क्यों शङ्का हो रही है ?

४६—एक श्रीकृष्ण भगवान्ने १६१०८ रूप धारण करके १६१०८ रानियोंको ब्याहा और उनके साथ प्रत्येक घरमें पृथक्-पृथक् निवास किया । फिर अनन्तशक्ति, सर्वव्यापक परमात्मा अनेक रूप धरकर इस जगत्रूपी नाटकको खेल रहा है, इसमें आपको क्यों शङ्का होती है ?

४७—श्रीकृष्ण भगवान् एक समय वृन्दावनमें गोपबालकोंके साथ बछड़े चरानेके लिये गये । उस समय ब्रह्माजी उनकी परीक्षा करनेके लिये आये और एक ओर सभी बछड़ोंको हर ले गये तथा दूसरी ओर सब गोपबालकोंको हर ले गये । तब श्रीकृष्ण भगवान् उनके सम्बन्धियोंको राजी करनेके लिये स्वयं ही सब बछड़ोंके रूपमें तथा गोपबालकोंके रूपमें उनके ही वेष और साधन, जैसे वस्त्राभूषण, लकुटी और बाँसुरीसे युक्त हो गये । जड़-चेतन सभी रूपोंमें हो गये । फिर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नाथ परमात्मा यदि इस स्थावर-जङ्गमरूपमें हो जाते हैं, तो इसमें शङ्काकी क्या बात है ?

४८—परमात्मा सर्वत्र हैं और परमात्मामें यह सारा जगत् उनकी मायासे भासित हो रहा है तथा यह भासमान जगत् मिथ्या है और एक परमात्मा ही सत्य हैं । यह बात एकदम सत्य है तथा जो सत्य—परमतत्त्व है, वही हम हैं—इसका वारंवार चिन्तन करे ।

४९—प्राणीमात्रमें आत्मा है और आत्मामें प्राणीमात्र हैं और वह आत्मा हम हैं, यह नितान्त सत्य है । हम सत्य हैं, जन्म-जरा और मरणसे रहित हैं । यह वारंवार चिन्तन करे ।

धनकी आसक्तिसे पतन

धनासक्त मानवमें होता धनके प्रति 'ममत्व'-'अभिमान' ।
धनका 'मान' बढ़ाता शठ वह 'सदाचार'का कर 'अपमान' ॥
'काम' 'प्रेम'का स्थान छीनता, लेता 'भोग' 'त्यागका' स्थान ।
आ जाता 'अधिकार' स्थानच्युत हो जाता 'कर्तव्य' महान् ॥
आती घोर 'विषमता' पावन 'समता' हट जाती तत्काल ।
'निर्दयता' 'दयालुता'का ले स्थान बना देती बेहाल ॥
जो धन असत्-मार्गसे आता नित्य बढ़ाता रहता पाप ।
वह वरदान नहीं जीवनमें है वह घोर अशुचि अभिशाप ॥

आजका तनावपूर्ण जीवन और मानसिक रोग

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

एक साधारण-सी हैसियतके क्लर्क महोदय तने हुए, कुछ उद्विग्न-से मेरे पास आये और उन्होंने पाँच सौ रुपये उधार माँगे। मैंने आश्चर्यसे पूछा, 'क्या किसी कन्याके विवाह इत्यादिके लिये प्रबन्ध कर रहे हैं या पुत्रको उच्च शिक्षाके लिये कहीं बाहर भेज रहे हैं? रुपयेको क्या कीजियेगा?'

वे उच्च स्वरमें कुछ आँखें तरेरते हुए बोले, 'अजी, क्या बताऊँ पिछले तीन महीनेसे बड़ा उद्विग्न जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मनपर बड़ा भारी बोझ है। सदा तनाव बना रहता है।'

'आखिर बात क्या है?' मैंने समवेदनाभरे स्वरमें पूछा।

'बात भी छोटी-सी है और फिर बढ़कर तिलका ताड़ हो गयी है। मेरे घरके सामनेवाला शराबी पड़ोसी तनिक-सी बातपर मुझसे लड़ बैठा। पहले आवेशमें जोर-जोरसे बोला, फिर हाथा-पायीकी नौबत आ गयी। मार-पीट हो गयी। उसने मुझपर फौजदारीका मुकदमा दायर कर दिया है, पर उसका पक्ष कमजोर है। मैंने प्रसिद्ध वकील किया है और अभी जीत रहा हूँ। भला उस, छोटे-से आदमीसे मैं कैसे नीचा देख सकता हूँ? मेरी भी इज्जतका सवाल है। अब थोड़ा-सा पैसा तो खर्च होगा, देखना, कैसा नीचा दिखाता हूँ। बस, आप पाँच सौ रुपयेका इंतजाम कर दीजिये। रुपया तो आता-जाता रहता है, पर एक बार उस दुष्टको हराना जरूर है।' यह कहते-कहते वे आवेशमें आ गये। उनकी भौंहें तन गयीं और नेत्र कुछ लाल हो गये।

स्पष्ट था कि वे बदला लेनेके लिये तने बैठे थे। तीन महीने होनेपर भी उनकी उत्तेजना और आवेश शान्त नहीं हुए थे। मन तनावसे भरा हुआ था। उनका दिमाग थका-माँदा-सा मालूम हो रहा था। यह तनावपूर्ण अवस्था ही मानसिक अस्वस्थताकी सूचक है।

× × ×

हालकी ही बात है, एक व्यक्तिको इतना भयानक क्रोधका दौरा उठा कि उसने अपनी पत्नीकी नाक काट डाली और इस गुस्सेका कारण साधारण ही था। उसकी पत्नी जब-तब अपनी माँके घर जानेकी जिद किया करती थी। पति महोदय क्रोधसे सदा तने रहते थे। यह तनाव दिमागमें बढ़ता रहा; पनपता रहा, आखिर बढ़कर उसका भयानक दुष्परिणाम निकला। पतिको सजा मिली होगी और पत्नी हमेशाके लिये कुरूप हो गयी!

× × ×

मेरे एक मित्र हैं। हिंदीके उच्चकोटिके कवि हैं। प्रोफेसर हैं। उनकी लेखनीमें जादू है। उनकी एक समस्या है कि रात्रिमें उन्हें नींद नहीं आती। चारपाईपर पड़े करवटें बदलते रहते हैं। कई बार नींद लानेवाली दवाइयोंका प्रयोग करके सोते हैं, लेकिन डाक्टर कहता है कि इन बेहोशी लानेवाली दवाइयोंमें खतरा है। बार-बार निद्रा लानेवाली ओषधियाँ नहीं लेनी चाहिये। अब बिना उस दवाईके दो-दो दिन नहीं सो पाते हैं। अनिद्रा रोगसे परेशान हैं। उन्होंने एक बार मुझे अपने मानसिक अस्वास्थ्यकी सूचना देते हुए लिखा था, 'मेरे शिक्षक प्रो० बोरगाँवकर ३० वर्ष इसीसे बीमार रहे और अन्तमें आन्तरिक तनावपूर्ण मानसिक अवस्थाके कारण मरे।' मैंने नींद न आनेके अनेकों रोगियोंको देखा है, जो थोड़ी-सी नींदके लिये सब कुछ बलिदान करनेको तैयार रहते हैं। दिल्लीमें एक अठारह सालकी युवती एक सालतक न सोयी। एक ६० वर्षकी वृद्धा पुत्र-शोकमें उद्विग्न होकर १२ वर्षतक पूरी न सोयी। यह अनिद्रा रोग बहुत दिनोंतक तनावपूर्ण जिंदगी जीने और व्यर्थकी चिन्ता और गुप्त भयको मनमें स्थायीरूपसे बसा लेनेका दुष्परिणाम है।

राँचीका एक समाचार है—

'पता चला है कि राँची जिलाके लोहरदगा थानाके अन्तर्गत दूरगाँव नामक ग्राममें एक उराँव युवकने अपने पिताकी हत्या लाठीसे मारकर कर दी। पिताने अपने युवक पुत्रको गाली दी थी। इसपर वह बुरा मान गया और इतना उत्तेजित हुआ कि पिताकी हत्या कर दी।'

इतने छोटे कारणपर ऐसा महापाप-काण्ड कर डालना गुप्त मनमें जमे हुए तनावके कारण ही हुआ।

× × ×

एक युवक विद्यार्थी सिनेमाके संसारसे आकर्षित होकर बम्बई भाग निकला। वहाँ अध-पगला-सा फिरता रहा। कई

सिनेमा बनानेवाली कम्पनियोंकी खाक छानता रहा। उसके गुप्त मनमें फिल्मी कलाकार बननेकी अदम्य और उत्कट इच्छा थी। दुर्भाग्यसे आजकल जो सस्ती फिल्में बनती हैं, उनमें काम-क्रीड़ा, उच्छृङ्खलता एवं अनैतिक कृत्योंकी भरमार रहती है। इन्हें देख-देखकर युवक स्वप्नके संसारमें विचरण किया करते हैं। वासनाद्वारा उत्पन्न तनावसे भरे रहते हैं। इस विद्यार्थीको जब कुछ न मिला, तो आत्महत्या कर ली। जेबमें जो कागज मिला, उसमें लिखा था—'मैं सिनेमाका हीरो बनना चाहता था। ऐसी कुरूप दुनियामें मैं जीना नहीं चाहता, जिसमें मेरी कलाको समझनेवाला कोई न हो।' मानसिक तनावसे अकाल मृत्यु हो गयी!

× × ×

एक नववधूने सासके व्यङ्ग्य बाणोंसे तंग आकर आत्महत्या की है। उसने जो अन्तिम पत्र लिखा था, उसमें यह स्पष्ट किया गया था कि वह घुटन और तिरस्कारसे तंग आ गयी है और इस प्रकार अपने दुःखमय जीवनका अन्त कर रही है। स्त्रियोंमें तनाव बहुत अधिक रहता है, जिसके कारण वे मानसिक नरकमें रहती हैं।

× × ×

हालकी ही बात है कि एक पेन्शन लेने आये हुए वृद्ध बैंकमें ही गिरकर मर गये। एक अध्यापक कक्षामें कुर्सीपर बैठकर पढ़ाते-पढ़ाते ही चल बसे। अध्यापकों तथा विद्यार्थियों-को उनके शवका दाह-संस्कार करना पड़ा।

ऐसे व्यक्ति हरदम मनमें कुछ-न-कुछ तनाव या चिन्ताकी स्थिति बनाये रहते हैं। काल्पनिक भय तथा मानसिक बीमारियोंसे परीशान रहा करते हैं। परिवारकी छोटी-बड़ी अनेक चिन्ताएँ उन्हें सदैव घेरे रहती हैं। यही जीर्ण चिन्ताएँ बढ़कर मानसिक रोग बनते हैं और अन्तमें उनकी मृत्युके कारण बनते हैं।

तनावके कारण क्या हैं

प्रश्न उठता है, मानसिक तनाव क्यों उत्पन्न होता है?

आजकल लोग तनिक-सी बातपर क्रुद्ध हो जाते हैं। बुरा मानने और ईर्ष्या-वैर करनेकी दुष्प्रवृत्ति इतनी उग्र हो उठी है कि अहंपर तनिक-सी चोट लगते ही नाराज हो उठते हैं। उनकी पाशविक वृत्तियाँ उच्छृङ्खल हो उठती हैं। दूसरोंसे अनबन होनेपर चिन्ता और फिर उससे मानसिक तनाव पैदा होता है। उनकी स्थिति नर-शरीरवाले एक पिशाच-जैसी हो जाती है।

पशुओंका स्वभाव है, बिना बात नाराज या असंतुष्ट हो बैठना, सींग या लातोंसे मारना या फिर दाँतोंसे काट लेना।

साँपको चाहे भूलमें ही या अनजानमें किसीने छेड़ दिया हो, पर वह कुत्सित स्वभाववश अपने-आपको थोड़ा-सा आघात लगनेमात्रसे ही इतना क्रुद्ध होकर तन जायगा कि सामनेवालेके प्राण ही लेकर छोड़ेगा।

कहते हैं कि सिंह, बाघ, तेंदुआ आदि हिंस्र पशु केवल इतनी-सी बातपर नाराज हो जाते हैं कि हमसे किसीने आँख ही कैसे मिलायी! नीची आँखें करके भले ही कोई निकल जाय, पर दूसरेके द्वारा उनका सामना किया जाना वे अपना अपमान समझते हैं। लोग बताते हैं कि भूत, पलीद, पिशाच और राक्षस भी ऐसे ही असहिष्णु होते हैं। अपने विरुद्ध जरा-सी बात सुनते ही आवेशमें भर जाते हैं।

सर्प, बाघ और भूत-पिशाच मनुष्ययोनिमें तो नहीं माने जाते, पर मनुष्योंकी आकृतिमें भी बहुत-से पाये जाते हैं। जिन्होंने अपनी हिंस्र प्रवृत्तियों, अपने क्रोध, उत्तेजना, उन्माद और आवेशको वशमें करना नहीं सीखा है, वे हिंस्र पशु ही तो हैं।

आजका कानून फौरन बदला लेनेमें बाधा डालता है। इसलिये दूसरोंके प्रति क्रोध, उत्तेजना और आवेश हमारे गुप्त मनमें जमे रह जाते हैं। आज मुकद्दमेबाजी तेजीसे चल रही है और वकील लोग अनाप-शनाप कमा रहे हैं। इसका कारण यह है कि लोग मुकद्दमे लड़-लड़ाकर मनके तनावको किसी प्रकार निकालना चाहते हैं।

उसने मुझे अपशब्द कहा, उसने मेरी मानहानि की, उसने मुझे पराजित किया और उसने मेरा धन हरण किया—ऐसे विचार जब गुप्त मनमें जमा हो जाते हैं, तब मन तनाव-की स्थितिसे भर जाता है। मनुष्य किसी-न-किसी तरह बदला लेनेकी योजनाएँ बनाता रहता है। वैर बढ़ता ही जाता है। वैरसे वैर कभी शान्त नहीं होता। प्रेम, दया, करुणा, ममता, स्नेह, सहानुभूति आदि कोमल प्रवृत्तियोंद्वारा ही वैर-भाव शान्त होता है और तनाव कम होता है।

कहा भी है—

अक्रोशद्वधीन्मां स ह्यजयद्हरच्च मे।
ये च तन्नोपनह्यन्ति वैरं तेषूपशाम्यति॥

अर्थात् 'उसने मुझे गाली दी, मेरा अपमान किया, मुझे पीटा, उसने मुझे पराजित किया और उसने मेरे धनका हरण किया—जो व्यक्ति ऐसे तनावपूर्ण विचारोंको मनमें स्थान

नहीं देते, उनमें वैर शान्त हो जाता है। तनावपूर्ण स्थिति कम हो जाती है।'

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण हि शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः॥

याद रखिये, वैरभाव रखनेसे वैर कभी शान्त नहीं हो सकता। अवैर अर्थात् प्रेममय क्षमाशील भाव रखनेसे ही वैरभाव (सब प्रकारका तनाव) शान्त होता है। यह सनातन धर्म है।

व्यर्थके झगड़ों और उत्तेजनासे कोई समस्या सुलझती नहीं, वरं लड़ाई-झगड़े बढ़ते ही जाते हैं। मुकद्दमेबाजीसे कुछ हाथ नहीं आता, दीर्घकालीन वैर चलता रहता है। मुकद्दमेमें विरोधी पक्ष भी अपना पक्ष न्यायपूर्ण ही मानता है। अतः वे जीत या हार कर भी अपने पीछे संताप, पश्चात्ताप, दुःखद बेबसीकी एक लम्बी शृङ्खला छोड़ देते हैं।

तनावपूर्ण स्थिति भयंकर है। उससे बचनेके लिये मानसिक उद्वेगोंको गुप्त मनमें स्थान न दिया जाय। उद्वेगोंसे सावधान रहें। आवेश और उत्तेजना, घबराहट और हड़बड़ी, क्रोध और असंतुलनके क्षणोंमें अपनेको काबूमें रक्खा जाय और धैर्य तथा शान्तिसे काम लिया जाय।

यदि आप मानसिक संतुलन बनाये रहें, तो कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति ऐसी नहीं है कि उसका हल न निकल सके। आप केवल अपने मानसिक संतुलनको सुरक्षित रक्खें। अपनी सूझ-बूझ, बुद्धि और दूरदर्शितासे समस्याका हल निकालें।

हम कैसे सुखी रह सकेंगे ?

हमारे वेदोंमें मनकी तनावपूर्ण स्थितिको हटानेके अचूक उपाय दिये गये हैं, देखिये—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
(अथर्ववेद ३।३०।१)

अर्थात् हम पारस्परिक वैर-भावको त्यागकर सहृदय, मनस्वी तथा उत्तम स्वभाववाले हों; एक दूसरेको सदैव प्यारकी दृष्टिसे देखें। तभी हम सुखी रह सकेंगे।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥
(अथर्ववेद ३।३०।५)

अर्थात् जीवनको संशोधित करते हुए, ज्ञानमें वृद्धि करते हुए, परस्पर एक दूसरेकी सेवा-सहायता करते हुए, सदा-सर्वदा मीठी वाणीका उच्चारण करते हुए हम सब लोग मित्रतापूर्ण व्यवहार करें। सबके मन समान हों। (प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति, आनन्दकी दैवी स्थितियोंसे भरे रहें।)

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि॥
(अथर्ववेद ६।४०।३

अर्थात् (तनावपूर्ण मानसिक स्थितिसे बचनेके लिये हम भूत, भविष्य और वर्तमानमें कभी किसीसे वैर न करें।

आपकी यही आकांक्षा सदा रहनी चाहिये—

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः॥
(अथर्ववेद १२।१।५८)

अर्थात् मैं सदैव अपने मुखसे मीठे वचन बोलूँ। (मनमें दैवी गुण धारण करता रहूँ) सभी मुझसे प्यार करें। मैं दिव्य प्रकाशको अपने हृदयमें धारण करूँ। जो बुरे तत्त्व मेरे समीप आयें, उनसे मैं सदा सुरक्षित रहूँ।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः
सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजि-
ज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन्॥
(अथर्ववेद १९।१३।५)

बन्धुओ! जीवनमें पूर्ण सफलता और मानसिक सुख प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी दैवी शक्तियों (दैवी सम्पदा) को पहचानो और आसुरी दुष्प्रवृत्तियोंसे बचो। जीवनमें अनेकों विघ्न-बाधाएँ तो सदा आती ही रहेंगी। उनसे कभी मुक्ति नहीं होगी, पर उनसे संघर्ष करनेके लिये आपको अपने उज्ज्वल भविष्य और दैवी स्वरूपमें विश्वास होना चाहिये।

परमात्माके भजन, कीर्तन, धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययन, श्रवण इत्यादिसे मानसिक तनाव दूर होता है। छोटे बच्चोंसे खेलनेमें मन प्रसन्न रहता है। संगीतका बड़ा ही स्वास्थ्य-दायक प्रभाव होता है। आप धार्मिक संगीत सुनें और थोड़ा-थोड़ा स्वयं गाया करें। धार्मिक गायन, भजन, तुलसीकृत रामायण, भक्तप्रवर सूर और मीराँबाईके भजन तन्मयतापूर्ण स्वरमें गानेसे मनका तनाव दूर होता है। यथासम्भव मनमें किसीके प्रति वैरभाव, गुप्त भय अथवा चिन्ता न रक्खें प्रतिदिन भगवान्का पूजन किया करें।

समता

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(गीता २ । १३)

'अघोरनाथ ! साधुता व्यर्थ है यदि वह स्वार्थ-कलुषित हो।' गुरुदेवने दीक्षा देनेके दिन ही कहा था । आज उनके वचनोंका स्मरण आ रहा है—'यश, ऐश्वर्य तथा भोग तो प्रत्येक संसारासक्त चाहता है । सिद्धियाँ तुझे और क्या देंगी ? मठ, मन्दिर तथा लोकप्रशंसा—साधु-सम्प्रदायमें यह जो घोर सांसारिकता आ गयी है, उसे अपनाकर मुझे लज्जित मत करना । गृह-परिवार आदिका ही यह दूसरा रूप है । कामकलुषित, शास्त्रवर्जित घृण्य रूप । तुझसे मुझे आशा है—व्यक्तित्वके पोषणसे ऊपर उठना वत्स !'

'अपनी ही मुक्तिकी चिन्ता—यह भी तो व्यक्तित्वका ही चिन्तन है । स्वार्थ ही तो है यह ।' अघोरनाथ आज यह सोचने लगे हैं । क्षीणकाय, अपरिग्रहशील, तपोनिरत अघोरनाथने अबतक ऐसा कुछ नहीं किया है, जिससे यह कहा जा सके कि गुरुदेवके दीक्षाकालीन उपदेशको वे कभी भूले हैं । उनकी कठोर तपस्या, घोर वनमें एकान्त साधना एवं लोकनिरपेक्षताको देखते ही सबके मस्तक उनके सामने झुक जाते हैं ।

'छिः !' सच्चे योग-साधकके सम्मुख सिद्धियाँ आती ही हैं । अघोरनाथके सम्मुख अनेक रूपोंमें वे आयीं और बार-बार आयीं; किंतु उन्होंने तत्काल झिड़क दिया उन्हें । जैसे कोई घावभरे खजुलाहे कुत्तेको झिड़क देता है ।

'शिवस्वरूप गुरु गोरखनाथ अमर हैं । उन्होंने कालके पद अवरुद्ध कर दिये हैं । रसेश्वर-सिद्धिने उन्हें यह सामर्थ्य प्रदान की ।' नाथ-सम्प्रदायमें जो जनश्रुतियाँ हैं, अघोरनाथने भी सुनी हैं और उनपर श्रद्धा की है । आज इस श्रवणने चित्तको एक नवीन संकल्प दिया—'जरा-मरण-भयातुर, रोग-शोक-संत्रस्त, काम-क्रोध-लोभ-निष्पीड़ित मानवसमुदाय अपनी इन असह्य पीड़ाओंसे परित्राण पा जायँ यदि रसेश्वर-का सिद्धयोग सर्वसुलभ हो । लोकमङ्गलके इस अनुष्ठानमें आत्माहुति देनेमें भी श्रेय है ।'

मनुष्य महान् नहीं है । दैहिक बल, बुद्धि, धन अथवा तप उसे महान् नहीं बनाता । महत्संकल्प मनुष्यको महान् बनाता है । जो अपने संकल्पके प्रति सच्चा है और उसका संकल्प स्वार्थ-दूषित नहीं है तो समष्टि स्वयं उसको सुयोग प्रदान करती है । महत्संकल्पके लिये महान् श्रमकी शक्ति, साहस तथा अनुकूल योग अपने-आप उपस्थित होते हैं ।

अघोरनाथका संकल्प महान् था और अपने संकल्पके प्रति उनकी स्थिरप्रतिष्ठ निष्ठा थी । रसेश्वरके स्वरूप, उसकी मृत, मूर्छित, विद्ध आदि अवस्थाएँ तथा उनके सम्बन्धमें अन्य आवश्यक विवरण उन्हें अल्पकालमें ही प्राप्त हो गये । ऐसे अनेक विवरण उन्हें मिले, जिनकी प्राप्ति ही किसी रस-साधकके पूरे जीवनकी साधनाका परिणाम कहा जा सकता था ।

× × ×

विशुद्ध विप्रवर्गीय पारद—कृष्ण, पीत एवं अरुणिमासे सर्वथा शून्य शुभ्र चन्द्रोज्ज्वल रस धरामें अपने-आप उपलब्ध नहीं होता । अनेक अनुष्ठानोंके उपरान्त मन्त्रपूत साधक मरुस्थलके मानववर्जित प्रदेशके प्राणि-पद-स्पर्शहीन पवित्र सिकता-कणोंसे उसे तब कण-कणके रूपमें प्राप्त कर सकता है, जब ग्रीष्मके मध्याह्नमें धरागर्भसे रसेश्वरके कण ऊपर उठते हैं ।

अपनेको अग्निमें आहुति देनेके समान अनुष्ठान है यह । मरुस्थलकी प्रचण्ड ऊष्मा, जल-विहीन धरा और उसमें अनेक योजन लक्ष्यहीन भटकती यात्रामें—राशि-राशि उड़ती बालुकामें अल्पतम कणोंका अन्वेषण; किंतु अघोरनाथको यह दुष्कर नहीं लगा । उन्होंने शुद्ध विप्रवर्गीय पारद प्राप्त किया और पर्याप्त मात्रामें प्राप्त किया ।

विशुद्ध पारद—भगवान् धूर्जटिके श्रीअङ्गका सार-सर्वस्व । वह जिसे उपलब्ध हो गया, देव-जगत् उसका सम्मान करनेको विवश है । यमकी चर्चा व्यर्थ है, उद्धत चामुण्डा तथा अपना ही रक्तपान करनेवाली छिन्नमस्ता तक उस महाभागके सम्मुख संयमित हो जाती हैं । योगिनी, यक्ष-रक्षः-पिशाच उसकी छायाका स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं । स्वयं विशुद्ध पारदकी उपलब्धि अपने आपमें महती सिद्धि

है। किंतु अघोरनाथके महत्तम संकल्पकी शक्तिके सम्मुख तो इसकी कोई गणना नहीं है।

सिद्धभूमि आवश्यक थी। कामाख्या और हिंगलाज स्मरण आये। भगवती महामाया ही तो सिद्धरसकी साधनामें व्याघात उपस्थित करती हैं। इस विचारने अघोरनाथको जालन्धर पीठपर भी स्थिर नहीं होने दिया। त्रिपुरभैरवी प्रसन्न न हों, कोई सफलता किसीको मिला नहीं करती। उनके अङ्कका आश्रय अपेक्षित है रस-साधकको।

'भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी छाया जो स्फटिक शुभ्र-विग्रह वृषभध्वजके श्रीविग्रहमें पड़ती है, भस्मभूषिताङ्ग शिवके वक्षमें वह किञ्चित् श्याम प्रतीत होनेवाला प्रतिबिम्ब ही भगवती त्रिपुरभैरवी हैं।' अघोरनाथने अपने सम्प्रदायके एक संतसे कभी यह विवरण सुना था। साधनास्थल चुननेमें इस श्रवणने उनकी सहायता की।

'भगवान् नीलकण्ठके विशद वक्षमें भगवतीका प्रतिबिम्ब अर्थात् शक्तिसमन्वित पुरुष—अर्धनारीश्वरकी सौम्य क्रीड़ा-स्थली!' अघोरनाथने व्यास-पार्वती सरिताओंकी मध्यभूमि त्रिकोण सिद्धक्षेत्र कुलान्तमें भी सुदूर हिमक्षेत्रमें पार्वतीके उद्गमस्थानको उपयुक्त माना।

चतुर्दिक् हिमश्वेत शिखर, सत्त्वगुण मानो सर्वत्र साकार हो रहा है। पार्वतीके उद्गमका अल्प प्रवाह और उसे अङ्कमाल देता उष्णोदक निर्झर—भगवान् उमामहेश्वर-का व्यक्त विग्रह प्रकृतिमें वहाँ जलरूप है। योगसिद्ध तपस्वी अघोरनाथको आहारकी अल्पतम अपेक्षा होती है। जब आवश्यक हो, वे कुछ नीचे आकर वन्य कन्द-मूल सहज प्राप्त कर लेते हैं।

'विश्वके प्राणी जरा-मृत्यु, शोक-रोगसे परित्राण प्राप्त करें।' शरीरकी स्मृति नहीं। क्षुधा-पिपासाकी चिन्ताएँ बहुत पीछे छूट चुकी हैं। कटिमें कौपीन और फटे कानोंमें मुद्रा, जलपात्रतक रखना जिस तापसने त्याग दिया है, वह बड़ी-सी झोलीमें ओषधियाँ, खरल तथा अनेक वस्तुओंका परिग्रह लिये इस एकान्त हिमप्रदेशमें आ बैठा है। एक ही व्यथा है उसे—'प्राणियोंकी व्यथा दूर हो।'

'कहाँ त्रुटि है? क्या भूल हो रही है मुझसे?' अघोर-नाथ लगे हैं पूरे छः महीनेसे। आज शरच्चन्द्रिकाका भी योग आ गया, किंतु रसेश्वर अनुविद्ध क्यों नहीं होते? पारद मूर्छित हो जाता है। गुटिका बन जाती है। तापसहिष्णु भी हो गया है। सब हुआ; किंतु वह अनुविद्ध नहीं हो रहा है। परीक्षण-प्रक्रियाओंमें पड़कर वह पुनः सक्रिय, सप्राण हो उठता है। अघोरनाथने आसन स्थिर किया और गुरुदेवके पादपल्लवोंमें चित्तको एकाग्र करके वे ध्यानस्थ हो गये।

× × ×

शुभ्र ज्योत्स्ना घनीभूत होकर जैसे शरीर बन गयी हो। धराका स्पर्श विना किये भी सम्मुख सुप्रसन्न स्थित वह भव्य तपोमय श्रीविग्रह। पिंगल जटाभारसे विद्युन्मालाका भ्रम सहज हो सकता था। कर्णमें मुद्रा होनेसे अनुमान होता था कि वे देवता नहीं, कोई योगीश्वर हैं।

चाहते हुए भी अघोरनाथ नेत्र-पलक खोलनेमें समर्थ नहीं हो रहे थे। उनका कोई अङ्ग किञ्चित् गति करनेकी शक्तिसे भी रहित जान पड़ा; किंतु नेत्र-पलक खुले हों, इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन वे उन तेजोमयका कर रहे थे। मन-ही-मन चरणवन्दन कर लिया उन्होंने।

'वत्स! किसी समय यही इच्छा इस गोरखनाथको भी हुई थी।' अत्यन्त स्नेहस्निग्ध, किंतु तनिक खिन्न स्वर था—'गोरख मिट जाता, अपने अमरत्वकी अभिलाषा कहाँ की थी मैंने। मुझे तो रससिद्ध हो जानेके पश्चात्, पता लगा कि कालकी कृष्ण यवनिकामें मेरे लिये अमरत्वका यह छिद्र भी भगवती महामायाका पूर्व संकल्पित विधान ही था। उनका संकल्प अमोघ है। उनके लीला-विलासमें व्याघात उपस्थित किया नहीं जा सकता। मैं समझता था, कालके पदोंको रुद्ध करनेका साधन मुझे मिल गया है; किंतु भ्रम सिद्ध हुआ वह मेरा। मुझे भविष्यके साधकोंको संरक्षण एवं प्रकाश प्रदान करनेके लिये महामायाने सुरक्षित मात्र किया है।'

'धन्य हो गया जीवन। जन्म-जन्मकी साधना सफल हुई। साक्षात् शिवस्वरूप गुरु गोरखनाथने दर्शन देकर कृतार्थ किया मुझे।' अघोरनाथका देह भले निष्कम्प हो, उनका चित्त विह्वल हो रहा था। अनन्त भावनाओंका उद्रेक अन्तःकरणमें एक साथ उठ रहा था।

'भगवान् महाकालकी गति अवरुद्ध नहीं हुआ करती। उनकी गतिको रुद्ध करनेके साधन हैं; किंतु वे महामायाकी इच्छासे ही सक्रिय होते हैं।' गुरु कह रहे थे। 'कालके

प्रवाहमें वे साधन किन्हीं-किन्हींको सुरक्षित कर देते हैं किसी उद्देश्यविशेषसे ।'

'अच्छा समझ लो, तुम सफल ही हो जाते हो ।' अघोरनाथके अन्तर्द्वन्द्वको लक्षित करके गुरुने कहा । 'जरा-मृत्यु तथा व्याधिका ही निवारण तो कर सकोगे । भय, शोक, लोभ-मोह तो मनुष्यके मनसे उत्पन्न होते हैं । ये दुःख तो उसके कल्पनाप्रसूत हैं । अमर होनेमात्रसे मनुष्य सुखी कैसे हो जायगा ? तुम्हें लगता नहीं है कि मृत्युसे अभय होकर अजितेन्द्रिय प्राणी अधिक तमोगुणी, विषय-लोलुप, संघर्षशील, अधर्माचारी होकर परिणाम-स्वरूप अनन्त कालतक अशान्त, क्षुब्ध और दुखी रहने लगेगा ।'

'अनर्थ ! क्षमा करो नाथ !' अचानक अघोरनाथ चीत्कार कर उठे । उनके नेत्र खुल गये । वहाँ कोई दृश्य नहीं था; किंतु उस हिमप्रदेशमें भी उनका सम्पूर्ण शरीर स्वेदसे भर उठा था । उसी समय उन्होंने अपनी झोलीका सम्पूर्ण संग्रह पार्वतीके प्रवाहमें विसर्जित कर दिया ।

× × ×

'फट गया ! फट गया ! फट गया ! यह कञ्चुक फट गया !' अवधूत अघोरनाथ पुनः उन लोगोंमें आ गये हैं, जो उनसे परिचित हैं । जो साधना-कालसे इस तपस्वीमें श्रद्धा रखते हैं; किंतु सबको लगता है कि उग्र तपस्या तथा कठिन योग-साधनाने इनके मस्तिष्कको कुछ विकृत कर दिया है । कभी कोई शवयात्रा देखते ही नाचने लगते हैं—'अलख निरञ्जन ! अविनाशी हूँ मैं । अरे मूर्खो ! तुम सब रोते क्यों हो ! मेरा यह कञ्चुक फट गया । अब नया-नया, कोमल-कोमल, नन्हा-नन्हा कञ्चुक पहनूँगा ! अहा, सुन्दर, सुकुमार, छोटा-सा वस्त्र !'

अवधूतोंकी बात वैसे भी समझमें आनी कठिन होती है और अघोरनाथ तो कुछ विक्षिप्त हो गये हैं । वे कभी किसी बच्चेको गोदमें उठा लेते हैं—'अब यह वस्त्र मुझे छोटा पड़ने लगा है । धीरे-धीरे बड़ा वस्त्र बदल लूँगा । क्यों बड़ा वस्त्र ठीक रहेगा !' बच्चेसे ही पूछने लगेंगे ।

'बाबा, तेरा यह वस्त्र पुराना हो गया !' एक दिन गाँवके चौधरीका हाथ पकड़कर बोले । 'बहुत सिकुड़नें पड़ गयीं इसमें । फटनेको आ गया यह । अब इसे बदल डालना है ।'

'अभी आज ही तो यह कुर्ता-धोती मैंने पहनी है महाराज !' बेचारा चौधरी अपने नवीन वस्त्रोंको देखता और अवधूतके मुखको—'पुराने वस्त्र तो मैंने आज सेवकको दे दिये ।'

'अरे नहीं, डरना मत ! यह पुराना वस्त्र महादहनके काम आयेगा । वस्त्रका क्या, सेवकको दे दे या अग्निमें डाल दे !' अवधूत हँसते रहे—'कुत्ते-शृगाल, कौवे-गीध, मछली-कछुए, असंख्य कीट—अपने कोई दरिद्र हैं कि थोड़ेसे सेवक रक्खेंगे । सम्राट्के लक्ष-लक्ष सेवक !'

किंतु उस दिनसे लोग अवधूतसे डरने लगे हैं । वह चौधरी तीसरे दिन ही मर गया था और अवधूत तब भी ताली बजाकर कूद रहे थे—'महादहन किया अपने वस्त्रसे मैंने । मेरी लपटें, मेरा वस्त्र और अब-मैं रोता हूँ ! अहाहा !'

किंतु अवधूत सदा ऐसे उन्मत्त नहीं रहते । बड़ा स्नेह करते हैं शिशुओंसे । कोई बीमार दीख जाय तो उसके पैर-तक दबाने बैठ जायँगे । सिद्ध पुरुष हैं, एक चुटकी भस्म दे दें तो बड़े-से-बड़ा रोग भाग जाय । अब मस्तिष्क कुछ विक्षिप्त हो गया तो इसका कोई क्या करे । वैसे अपने लिये उन्हें कभी कुछ चाहिये ही नहीं । रोटी दो या हलवा, भूख लगी हो तो प्रेमसे पत्ते भी खा लेते हैं, न लगी हो तो खीर भी फेंक देते हैं—'मैं इस कीचड़का क्या करूँ । उजला लगता है तो तू मुखमें पोत ले ! मैं नहीं पोतता इसे ।'

'धन चाहिये ! मुझे भी तो थोड़ा धन चाहिये !' उस दिन ईंटोंके टुकड़े, टूटे शीशे, कंकड़, मिट्टीके डले एकत्र करने लगे और पूरी गलीका कूड़ा एकत्र कर लिया । बच्चोंने पूछा कि क्या करते हो तो बोले—'सम्पत्ति एकत्र कर रहा हूँ ।' फिर भाग खड़े हुए—'सब सम्पत्ति मेरी ! सब कहीं मेरी सम्पत्ति ! सम्पत्ति भी मैं, तुम भी मैं । मैं—अलख ! अलख ! गुरुदेव !'

अब पागलकी चेष्टाकी क्या संगति है । पता नहीं क्या बात है कि गाँवके पण्डितजी कहते हैं—'अघोरनाथ बाबा ही सच्चे ज्ञानी हैं । उनमें पूर्ण समता है । वे तत्त्वदर्शी हैं ।' कहीं पण्डितजीका मस्तिष्क भी तो कुछ गड़बड़ नहीं होने लगा है ?'

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार एम्० ए०, एल्० टी०)

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' यह ईशोपनिषद्का एक वाक्य है। इस वाक्यका अर्थ है, वैराग्यभावसे भोग करो। इस संसारमें दो तरहकी विचारधारा पायी जाती है। पहली विचारधारा अध्यात्मवादी है और दूसरी भौतिकवादी। भौतिकवादी विचारधाराका अर्थ प्रकृतिपर विजय मानते हैं। पहले बैलगाड़ी चलती थी, अब मोटर और विमान चलने लगे हैं; पहले मिट्टीका दिया जलता था, अब बिजली जलने लगी है; पहले जिन बातोंके लिये महीनों लग जाते थे, अब उनके लिये बटन दबाना काफी है। नयी-नयी मशीनोंके द्वारा मनुष्य प्रकृतिका स्वामी बनता जा रहा है।

अध्यात्मवादी विचारकोंकी दृष्टिमें उन्नतिका अर्थ प्रकृतिकी नहीं, आत्माकी विजय है। मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोहके सामने क्षण-क्षण अपनेको निर्बल पा रहा है। इन मनोवेगोंने उसे पागल बना रक्खा है। मनुष्यने मोटर बना ली, हवाई जहाजमें उड़ने लगा, बिजलीसे काम लेने लगा, एक सेकंडमें जहाँ चाहे वहाँ अपनी बात पहुँचाने लगा, मशीनके द्वारा प्रकृतिका स्वामी बन गया; परंतु अगर वह मोटरपर चढ़कर दूसरेको लूटने लगा, हवाई जहाजपर चढ़कर निहत्थोंपर बम बरसाने लगा, मशीनके द्वारा आग उगलने लगा तो यह विजय किस कामकी ? पर हो तो यही रहा है !

कहते हैं, यह संसार परमात्माने बनाया है। परमात्माने इस विश्वका निर्माण मनुष्यकी भलाई और उसके आनन्दके लिये किया है। परंतु हम देखते हैं कि संसारमें सुख नहीं। यदि सुखके लिये संसारका निर्माण हुआ था तो इतना क्रन्दन-रुदन क्यों ? इतनी पीड़ा क्यों ? इतना वैमनस्य क्यों ? क्या यही मानवता है, जिसका नग्न रूप हम आज इन आँखोंसे देख रहे हैं ? मानवरक्तसे वसुन्धराकी प्यास बुझायी जाती है, इस भूमिकी खेतियाँ मानवी अस्थियोंके चूर्णसे उपजाऊ बनायी जाती हैं, एक मानवी दल दूसरे मानवी दलके सत्यानाशमें अपना गौरव समझता है, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ धाँ-धाँ करके जल रही हैं और अपने आपको मानव कहनेवाला अग्निकी उन प्रचण्ड ज्वालाओंमें जीते-जी जलनेवाली सहस्रों सतियोंके हाहाकारको सुनकर अट्टहास करता है। शिशु अनाथ होते हैं तो क्या ? नवविवाहिताएँ विधवा होती हैं तो क्या ? रोगी और स्वस्थ नकली खाद्य पदार्थोंसे मरते हैं तो क्या ?

यह सब देखकर हृदय रखनेवालेको रोमाञ्च हो जाता है और वह पुकार उठता है 'क्या इस दयनीय अवस्थासे, भँवरों तथा मँझधारोंसे भरपूर इस संसार-सागरमें जीवन बितानेका है कोई उपाय ? और तब उसे वेदका यह मन्त्रांश सुनायी पड़ता है 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इस संसारमें वैराग्यभावसे भोग करना ही इस संसारके दुःखोंसे छूटने और संसारको पार करनेका एकमात्र मार्ग है।

बृहदारण्यक उपनिषद् (४-५) में याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयीका संवाद आता है। याज्ञवल्क्यने जब वानप्रस्थ आश्रममें जानेका विचार किया तो उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों—मैत्रेयी और कात्यायनीको बुलाकर कहा—'मैं परिव्राजक बनना चाहता हूँ; इसलिये कात्यायनीके साथ तुम्हारे हिस्सेका धन बाँट देना चाहता हूँ।' कात्यायनी साधारण स्त्री थी, वह धन लेनेको तत्पर हो गयी; परंतु मैत्रेयीने कहा—'यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् स्यां न्वहं तेनामृता।' 'भगवन्! यदि धन-धान्यपूर्ण समूची धरित्री ही मुझे मिल जाय तो क्या मैं अमर (दुःख-सुख और जन्म-मरणके बन्धनोंसे मुक्त) हो जाऊँगी। क्या मेरी आत्माको शान्ति मिल जायगी ?' याज्ञवल्क्यने कहा 'नेति नेति' 'नहीं अमरता तो नहीं मिल सकती। हाँ, धनियोंकी तरह तुम्हारा जीवन अवश्य हो जायगा।' याज्ञवल्क्यने आगे कहा—'यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।' 'सांसारिक प्राकृतिक साधनोंके मिलनेसे तुझे आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। हाँ, साधनसम्पन्न व्यक्तियोंके जीवनके समान तेरा जीवन सुखी जरूर हो जायगा।' मैत्रेयीने कहा—'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्' जिस वस्तुके मिलनेसे मुझे चिरस्थायी शान्ति न मिले तो उसके पीछे दौड़कर मैं क्या करूँगी। मुझे आत्मतत्त्वका उपदेश दीजिये।'

आज संसार इस आत्मतत्त्वसे दूर, दूर और बहुत दूर होता चला जा रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि वैज्ञानिक दृष्टिसे आज यद्यपि हम एक दूसरेके अत्यन्त निकट आ

गये हैं; परंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे हम एक दूसरेसे बहुत दूर हो गये हैं। विश्वशान्तिकी स्थापनाके हेतु संयुक्त राष्ट्रसंघमें एकत्र, विश्व-एकता और विश्वशान्तिका नारा लगानेवाला प्रत्येक राष्ट्र अपनी जेबमें छुरा लेकर बैठा है और अपने पड़ोसी और विरोधीके पेटमें भोंकनेको तैयार है। मनुष्यका मनुष्यसे विश्वास उठ गया है। आज चन्द्रमामें पहुँचनेके स्वप्नोंको साकार करनेवाला मनुष्य चन्द्रमापर अधिकार करनेका विचार कर रहा है और इन सबका फल यह है कि संसारमें दुःख, कष्ट, असंतोष, निराशा, परावलम्बन बढ़ रहा है। इसका दोष विज्ञानको नहीं दिया जा सकता। इसके लिये वास्तविक दोषी तो वह भावना है जो दूसरोंकी वस्तु और अधिकारको अपनी वस्तु और अपना अधिकार बनाना चाहती है। आजके विश्वकी दृष्टिसे हम इस विषयपर विचार करें तो हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि भौतिकवादी दृष्टिकोणके परिचायक साम्राज्यवाद और साम्यवाद दोनों ही हैं। अर्थात् लन्दन और न्यूयार्ककी साम्राज्यवादी विचारधाराका यही तो उद्देश्य है कि धन और शस्त्रशक्तिके बलसे संसारमें जो वस्तु मेरी नहीं है, वह किस तरह मेरी बनायी जाय और मास्कोकी साम्यवादी विचारधारा सुननेमें इससे भिन्न हो सकती है; परंतु उसका भी लक्ष्य वही है, जो साम्राज्य-वादी विचारधाराका है। वैदिक विचारधारा, जिसे हम ऋषि-मुनियोंकी विचारधारा कह सकते हैं, वह इससे बिल्कुल भिन्न है। यह विचारधारा जगह-जगह देखती है—कौन वस्तु दूसरोंकी है मेरी नहीं! जो मेरी नहीं, उसे किस तरह दूसरोंको दिया जाय? इसीलिये सनातन धर्मने, वैदिक धर्मने शान्ति और अमरताके लिये 'अपरिग्रह'का उपदेश दिया है। यह 'अपरिग्रह' क्या है? 'परि'का अर्थ है चारों तरफसे, 'ग्रह'का अर्थ है ग्रहण करना, पकड़ना। 'परिग्रह' का अर्थ हुआ किसी वस्तुको कसकर चारों तरफसे पकड़ लेना। और 'अपरिग्रह' का अर्थ हुआ उसे छोड़ देना। इसलिये वेदोंने संसारके सुख और ऐश्वर्योंको भोगनेसे मना नहीं किया; परंतु भोगते हुए भोगमें डूबनेसे मना किया, उसने संसारको वैराग्यभावसे भोगनेका उपदेश दिया। सम्पत्ति पवित्र है। मनुष्यको अर्थ प्राप्त करना चाहिये, सम्पत्ति प्राप्त करनी चाहिये और उसका ठीक-ठीक उपभोग भी करना चाहिये। संत तुकारामने कहा है—

सद्व्यवहारोंसे जोड़ो धन। उसे व्यय करो बन उदार मन॥

उदार-मन बनकर सम्पत्तिका भोग करना यही 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'का भाव है। इसको हम इस प्रकार एक दृष्टान्तद्वारा समझ सकते हैं।

प्राचीन कालमें कणाद नामके एक ऋषि थे। उनके पास अनेक ज्ञानार्थी ज्ञानोपलब्धिके हेतु आया करते थे। परंतु ज्ञानका उपदेश पात्रको देखकर किया जाता था, उसकी परीक्षा करके धर्मका उपदेश देनेका विधान था। एक दिन चार-पाँच व्यक्ति उनके पास आये और कुछ उपदेशकी प्रार्थना की। गुरुने उन्हें दूसरे दिन प्रातः छः बजे-के लगभग बुलाया। नियत समयपर जब वे व्यक्ति पहुँचे तो कणादजीने वहाँ एक बृहद् यज्ञका आयोजन कर रक्खा था। ज्ञानार्थियोंके आनेपर यज्ञ प्रारम्भ हुआ और वह बृहद् यज्ञ दो-तीन बजेके लगभग समाप्त हुआ। शिष्योंको आज भी ज्ञान-का उपदेश न मिला और अधिक देर हो जानेके कारण वे भूखसे व्याकुल होकर जब अपने-अपने घर जानेकी तैयारी करने लगे, तब कणादजी उनके पास आये और बड़ी नम्रता-से हाथ जोड़कर बोले कि 'महानुभावो! आज अब आप भोजन भी मेरे यहाँ करके जाइये, सब तैयार है। मैंने पहले ही यज्ञके उपलक्ष्यमें इसका आयोजन कर लिया था।' शिष्य रुक गये और एक बाल्टीमें घरके बाहर पानी रख दिया गया और थोड़ी देरमें उन्हें हाथ-पैर धोकर बैठनेके लिये कहा गया। जब वे चारों आदमी घरके बाहर हाथ-मुख धोने गये, दरवाजेपर चार-पाँच भयंकर जल्लादकी शक्लके व्यक्ति शस्त्र तथा मजबूत रस्सियाँ लिये आकर उपस्थित हो गये। जिस समय हाथ-मुख धोकर वे भोजनके थालोंपर जाकर खानेको तत्पर हुए, उसी समय उन व्यक्तियोंने इन्हें रोककर गम्भीरतासे कहा कि 'यहाँ भोजन करनेवालोंको यहाँ-के नियमोंके अनुसार अपनी कोहनीपर यह खपच्चियाँ बँधवाकर भोजन करना पड़ता है और जो ऐसे भोजन करने-से इन्कार करते हैं, उनकी गर्दनें इन तलवारोंसे यहीं उड़ा दी जाती हैं।' दोनों कोहनियोंपर खपच्चियाँ बँधवाकर भोजन करना अस्वाभाविक और अपमानपूर्ण होते हुए भी गर्दन कटनेके डरसे मना करनेलायक तो था नहीं, अतः कोहनियाँ बँधवाकर वे लोग परोसे हुए थालोंके पास बैठ गये। अब-तक कणादजी वहाँसे गायब थे, अब आ गये और हाथ जोड़कर उन्होंने उनसे भोजन करनेकी प्रार्थना की। परंतु

कोहनीपर खपच्ची बँधी होनेसे हाथ मुड़ नहीं सकते थे और उनके न मुड़नेसे भोजन करना असम्भव होनेसे वे नाराज होकर कणादजीसे बोले कि 'महाराज ! हमने आपका क्या विगाड़ा है कि आप इस तरहका अपमानपूर्ण व्यवहार हमसे कर रहे हैं ।' कणादने कहा—'इसमें अपमानकी कोई बात नहीं, तुमने मुझसे उपदेश चाहा था । आज मैं तुम्हें भोजन करना सिखाना चाहता हूँ । तुम्हें यह सुन्दर-सुन्दर रसगुल्ले और मिठाइयाँ हाथमें लेनेके बाद भी मुखमें ले जानेमें क्यों कठिनाई हो रही है, क्या इसका कारण जानते हो ? इसका कारण है, तुम अपने खानेकी चिन्तामें लगे हुए हो । यदि तुम अपनी चिन्ता छोड़कर, अपने लिये परिग्रहकी वस्तुओंका उपभोग न करके दूसरोंको खिलानेकी चिन्ता करो, वस्तुओं-का वैराग्यभावसे भोग करो तो तुम्हें कष्ट सम्भव नहीं । ग्रास पकड़ो, धनका संग्रह करो, परंतु उस धनके संग्रहको अपने लिये प्रयोग मत करो । यदि अपने थालीके रसगुल्ले-को उठाकर सामनेवालेके मुखमें डाल दो, सामनेवाला उठाकर तुम्हारे मुखमें डाल दे तो तुम्हारा पेट भी भर जायगा और तुम्हें कष्ट भी नहीं होगा ।'

आज जरा इस कणाद-यज्ञकी बात हम विश्वपर घटायें और देखें तो हमें पता चलेगा कि आज यदि रूस अमेरिका-को अपना धन, अपना साम्राज्य, अपना सब कुछ दे दे और अमेरिका रूसके लिये अपना सब कुछ त्याग दे तो विश्वशान्ति दूर नहीं, संसारके कष्ट मिट जायँ; बौद्धिक और शासनिक परतन्त्रताका अन्त हो जाय । यह है 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' वैराग्यभावसे भोग करनेका तात्पर्य ।

इसलिये हिमालयकी उन गुफाओंमेंसे जहाँ कभी तपस्वी लोग भौतिकवादमें डूबी हुई संतप्त दुनियाको आध्यात्मिक शान्तिका संदेश दिया करते थे, आज भी एक दूसरेके रुधिरकी प्यासी, बावली दुनियाके लिये एक गूँज सुनायी दे रही है । 'मारनेके स्थानपर मरना सीखो, मक्कारीके स्थान-में ईमानदारी सीखो, लेनेके स्थानमें देना सीखो, उच्छृङ्खलता-के स्थानमें संयम सीखो, फँसनेके स्थानमें निकलना सीखो, प्रकृतिकी चकाचौंधमें अपनेको खो देनेके स्थानमें उसमेंसे आत्मतत्त्वको समेटना सीखो, मशीन बननेके स्थानमें मनुष्य बनना सीखो, काँचके टुकड़ोंको मोती मत समझो, कागजके गुलदस्तेको असली गुलाबके फूल मत समझो, नकलीको असली मत समझो, 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' को याद करो ।" आज भी यह संदेश आसमानमें लिखा है और पूर्वसे बहनेवाली हवामें गूँज रहा है । सुननेवाले उसे सुनते हैं—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

जीवनका सार—धर्म

धर्म मनुज-जीवनका सार ।
धर्मविहीन नराधमको है बार-बार धिक्कार ॥
वेद-श्रुति-स्मृति धर्ममूल है मङ्गलका आधार ।
धर्म काट देता भवबन्धन, खोल मोक्षका द्वार ॥
सत्य न्यायपर दृढ़ करता है धर्म शुद्ध आचार ।
काम-कोप-मद-लोभ-मोहका करता है संहार ॥
समराङ्गणमें विजय कराता, करता राष्ट्रोद्धार ।
साहस शौर्य अभयका करता जीवनमें संचार ॥
है सर्वस्व धर्म मानवका वही ईश साकार ।
धर्मवेदिपर बलि हो जाओ, हो आनन्द अपार ॥

—श्रीभगवतनारायण भार्गव

हरेर्नामैव केवलम्

(लेखक—प्रो० श्रीबाँकेबिहारीजी झा, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

अनादिकालसे भारतीय जन-जीवनका चरम लक्ष्य-भगवत्प्राप्तिपरक ही माना गया है। यही भारतीय संस्कृतिका मर्म है; यही उसकी अलोकसामान्य विशेषता है। सारा संसार सदासे अधिभूतके पीछे पागल है और भारत सदासे उसका पर्यवसान अध्यात्ममें मानकर अध्यात्मप्रेमी रहा है। यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे यहाँकी समस्त अपरा विद्याएँ साधन और परा विद्या उनका साध्य रही है। प्रत्येक शास्त्रविशेषके प्रवर्तकने अपने शास्त्रको त्रिवर्ग-प्राप्तितक सीमित नहीं रखकर उसे चरम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्षका भी प्रापक बताया है। अतः हमारा कोई ग्रन्थ भगवत्स्तुतिके बिना अपना प्रारम्भ नहीं करता। योग, यज्ञ, तप, ज्ञान, कर्म आदि मोक्ष-पथ हुए तो क्या हुए, यहाँ तो संगीतशास्त्र, शब्दशास्त्र, काव्यशास्त्र और यहाँतक कि कामशास्त्र-जैसे शास्त्र भी अपना चरम लक्ष्य परानन्दसंदोह ब्रह्मकी प्राप्तिको ही मानते हैं। इसीलिये तो हमारे यहाँ समस्त प्रकारके शास्त्रोंके प्रणेता ऋषि-मुनि ही हुए हैं। इस तरह भारतका भूत भी अध्यात्म हो जाता है और सब बातें 'ईश्वरार्पणमस्तु' से ही उपसंहृत होती हैं।

यहाँ हम भगवत्प्राप्तिके केवल आध्यात्मिक साधनोंका विमर्श करते हुए देखेंगे कि कीर्तनयोगका उनमें क्या महत्त्व है। पहले यह बतला देना आवश्यक है कि कीर्तनयोग कोई नवप्रवर्तित मार्ग नहीं है। कुछ लोगोंकी यह मान्यता हो सकती है कि श्रीचैतन्यदेवसे ही इसका प्रवर्तन हुआ और इसलिये यह कलियुगीन ही नहीं, अत्यर्वाचीन है। पर बात ठीक उल्टी है। यह उतना ही पुराना है जितना हमारा वेदान्त, सांख्य, योग या मीमांसा आदि।

पद्मपुराणमें इसकी चर्चा आयी है कि श्रीभगवान्के दिव्यधाममें उनके प्रिय पार्षदोंद्वारा संकीर्तनसमारोह हुआ, जिसमें—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा-
स्तत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव॥

इसी पुराणमें अन्यत्र यमद्वारा अपने दूतोंको दिये गये आदेशमें कीर्तनकी महत्ता स्पष्ट होती है—

स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतमें अनेक स्थलोंपर कीर्तनयोगकी श्रेष्ठता बतलायी गयी है। स्वयं प्रभु श्रीमुखसे कहते हैं—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

आदिशक्ति महागौरीके दरबारमें महाकालकी अध्यक्षतामें नित्य प्रदोषकालीन कीर्तन होनेका उल्लेख भी पुराणोंमें मिलता है। अतः उपर्युक्त उद्धरणों तथा ऐसी अन्य पौराणिक उक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि कीर्तन अनादिकालसे चला आ रहा है।

कीर्तनयोगका तात्पर्य क्या है, इसका स्वरूप और क्षेत्र क्या है, इसे भी जान लेना आवश्यक है। वाच्यार्थमें 'कीर्तन' शब्द 'कीर्त' धातुसे 'ल्युट्' प्रत्यय करनेपर व्युत्पन्न होता है, जिसका तात्पर्य है भगवत्कीर्तिके उच्चारका व्यापार। इस प्रकार हमारी रागात्मिका वृत्तिके द्वारा सम्पाद्य 'अनुराग' ही इसकी पृष्ठभूमि है और श्रवणादिक नवधा भक्तिके रुचिर भवनका यह महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अनन्य स्तम्भ है; क्योंकि भक्तिका स्वरूप ही अनुरागमय है; महर्षि शाण्डिल्यने इसे स्पष्ट किया है—'सा परानुरक्तिरीश्वरे।' देवर्षि नारदके अनुसार भी 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।' और कीर्तन 'अनुराग'के पूर्ण परिपाकका रूप है। परम्परागत अनुभवानुमोदित नाम, रूप, लीला, धाम तथा नाभाजीद्वारा उल्लिखित भक्ति, भक्त, भगवन्त और गुरु—ये आठ भावमय भगवद्विग्रह इसके प्रतिपाद्य हैं। अधिकारियोंके कथनानुसार पिछले सातके प्रति अनुराग गाढ़ होते-होते नामानुरागमें पर्यवसित हो जाता है। भाव

इसकी प्राणवायु है और गायन इसका रुचिर कलेवर है, वाद्य स्वरूप है। भगवान् शंकर इस सरणिके आदिप्रवर्तक हैं, ब्रजाङ्गनाएँ इसकी परमाचार्याएँ हैं और देवर्षि नारद इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इस तरह कीर्तनयोगकी यह निर्मल सरिता युग-युगसे अविच्छिन्नत्वेन प्रवाहित होती हुई भारतकी पुण्यभूमिको सरस करती रही है और कलियुगमें चैतन्य, मीराँ, कबीर, सूर, तुलसी, नामदेव, तुकाराम, नरसी आदि अनेक चिन्मय आत्माएँ इसमें स्नान करके स्वयं क्या, जगत्को धन्य करती रही हैं।

अब हम प्रकृत प्रसंगपर आयें। प्रश्न होता है कि भगवत्प्राप्तिके अन्य अनेक साधनोंके रहते कीर्तनयोगके आविर्भावका कारण क्या है और विशेषकर कलियुगी प्रजाओंके निमित्त साधनान्तर-परिहारपूर्वक कीर्तन ही एकमात्र समुचित साधन क्यों समझा गया?

[कीर्तन अपने वाच्यार्थमें एक क्रियाविशेषका बोधक होनेपर भी अपने अनुराग-तत्त्वके कारण सीधा मतलब भक्तियोगके सर्वाङ्गीण रूपसे रखता है, इसे हम फिरसे याद कर लें।]

प्रश्न जितना सुन्दर है, समाधान भी उतना ही आह्लादजनक और हृदयावर्जक है। बात यह है कि प्रभु भावमय हैं। उन्हें केवल दिल चाहिये, प्यार चाहिये, और कुछ नहीं। उनकी इस भावैकगम्यताको एक भक्तने बड़े सही रूपमें आँका है—

भावका भूखा हूँ मैं औ भाव ही बस सार है।
भावसे मुझको भजे तो भवसे बेड़ा पार है॥
अन्न-धन और वस्त्र-भूषण कुछ न मुझको चाहिये।
आप हो जावे मेरा, बस पूर्ण यह सत्कार है॥
भाव बिन सब कुछ भी दे डाले तो मैं लेता नहीं।
भावसे एक फूल भी दे तो मुझे स्वीकार है॥
भाव बिन सूनी पुकारें मैं कभी सुनता नहीं।
भाव-पूरित टेर ही करती मुझे लाचार है॥

सचमुच सर्वसौख्यमय प्रभुको कोई दे ही क्या सकता है? तभी तो भक्तवर रहीमने कहा कि 'हे नाथ! रत्नाकर जिसका घर और लक्ष्मी जिसकी गृहिणी है, ऐसे तुमको क्या दिया जाय? हाँ, गोपीनयनकोरसे तुम्हारा मन छिन गया है; यह लो, अपना मन मैं तुम्हें देता हूँ'—

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
देयं किमस्ति भवते जगदीश्वराय।
आभीरवामनयनाहृतमानसाय
दत्तं मनो यदुपते कृपया गृहाण॥

ऐसे प्रभुकी प्राप्तिके लिये योग, यज्ञ, तप, ज्ञान, वैराग्य आदिमें द्विधा व्यर्थता है। एक तो इन सबोंमें कर्तृत्वाभिमानका पूर्ण अभाव नहीं होनेके कारण साधक दलिताशय और दीन नहीं हो पाता, जिससे भगवत्प्राप्तिका पूर्ण अधिकारी होनेमें उसे जन्मों लगनेपर भी कठिनाई बनी ही रहती है—

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
(मानस)

दूसरे, यदि कोई भाग्यवान् साधक उस लायक हो भी जाता है, तो उसे वह मजा कहाँ, जो भक्तोंको मिलता है? उसका चरम लक्ष्य मुक्ति है, जो तत्त्वतः शून्यका प्रतीक है। भक्त तो मुक्ति देनेपर भी नहीं लेते—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
(भागवत)

रसगुल्लेको खानेमें मजा है, रसगुल्ला ही हो जाना तो एक अजीब बात है। अतः भक्त प्रभुकी नित्यलीलाके सहचर होकर उनके साथ शाश्वत विहारके अधिकारी होते हैं।

ऐसा होनेका कारण है। दो ढंगके उपासक होते हैं। उपास्यदेव प्रभुको ईश्वर और अपनेको जीव मानकर उपासना करनेवालोंकी एक कोटि है तथा प्रभुके साथ स्वामी, सखा, पुत्र, पति आदि लौकिक सम्बन्धकी स्थापना करके भजन करनेवालोंकी दूसरी कोटि है। पहली कोटिके उपासकोंको अपनी भावनाके अनुसार प्रभु दुर्लभ, दूरस्थ और महतो महीयान् मालूम पड़ते हैं तथा दूसरी कोटिके भक्तोंको वे बिल्कुल अपने, सगे मालूम पड़ते हैं। धनुर्यज्ञमें प्रभु भुवनमोहिनी छबि लेकर उपस्थित थे। फिर भी—'बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा'। लेकिन एक दूसरा समुदाय उन्हें किस भावसे देख रहा था?

जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें।

और सचमुच इन लोगोंको प्रभु उसी रूपमें मिले। 'योगिनामप्यगम्यः' प्रभुने दुर्लह चितचोर बनकर रनिवास हास-विलासरसबस जन्मका फल सबोंको दिया। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।' प्रभुकी तो घोषणा ही है—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' एक दृष्टान्तसे यह रहस्य स्पष्ट होता है। कोई सम्राट् अपने दरबारमें जिस गम्भीरतासे रहता है और जिस तमीजसे सबोंकी सलामी लेता है, उस औपचारिकताको वह अन्तःपुर जाते ही छोड़ देता है। वहाँ उसका आनन्दमय रूप है। वहाँ वह सबोंको जितना और जिस रूपका अधिकार देता है, वह बाहरी लोगोंको कैसे नसीब होगा? इसी तरह ईश्वर-जीवका नाता लेकर साधक प्रभुकी दिव्यानन्दमयी नित्यलीलामें सम्मिलित नहीं हो सकता। प्रभुके वे एकान्त प्यारे लोग 'सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः' होते हैं और वे ही लोग उनका सदा सांनिध्य प्राप्त करते हैं। उनकी पुकारपर वे पागल होकर दौड़ पड़ते हैं। उनका वचन है—

> नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
> मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

और जहाँ प्रभु ही हैं, वहाँ उनका अन्य भावविग्रह कैसे नहीं रहेगा। अतः—

> सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र
> यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः।

यही भक्तिका रहस्य है। इसलिये सयाने लोग—'मुकुति निरादर भगति लुभाने' होते हैं। हम पहले जान चुके हैं कि भक्तिका एक प्रधान स्तम्भ कीर्तन है और उसके प्रतिपाद्य आठ भगवद्विग्रहोंमें सातका पर्यवसान नामानुरागमें होता है। नामकीर्तनकी प्रतिष्ठासे ही समग्र भक्तिक्षेत्रका अध्याहार हो जाता है। नरसीकी यह पंक्ति इसी सत्यकी पुष्टि करती है—

> राम नाम शुं ताळी लागी, सकळ तीरथ तेना तनमां रे॥

इसलिये नाम-महिमासे हमारे ग्रन्थ भरे पड़े हैं। इसका भी रहस्य यही है कि किसीके प्रति प्यारका अत्यन्त उद्दाम रूप यही है कि हरदम उसका नाम होठोंपर रहे।

यह एक बात हुई। इसके साथ ही यह बात आती है कि कलियुगमें इसकी केवलताका तात्पर्य क्या है? महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी यह नारदपुराणोक्त घोषणा सचमुच बड़ी मार्मिक है—

> हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
> कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

गोस्वामीजीकी पंक्तिसे इस प्रतिज्ञाका रहस्य स्पष्ट होता है—

> चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

कलियुगकी मलिनस्वभाववाली प्रजाको योगकी क्षमता नहीं है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' और वह बहुत कठिन है। यज्ञ तो विधिनिषेधमय है। आजकल यज्ञोंको सफलतापूर्वक सम्पन्न करना असम्भव है। न यज्ञीय सामग्री शुद्ध मिलेगी और न वैदिक प्रौढ़ मिलेंगे। इसी तरह तप, ज्ञान, वैराग्य—सबोंके साथ कठिनाई है। इसलिये इस युगमें नाम सर्वोपरि ही नहीं, अनन्य साधन माना गया। इसमें चित्तशुद्धि, यम, नियम आदिकी कोई आवश्यकता नहीं। साधन इतना सुगम और इसका फल! भागवतमें स्पष्ट कहा गया है—

> कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
> कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
> कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
> द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
> (श्रीमद्भागवत १२। ३। ५१-५२)

दोषोंके निधि इस कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि इसमें केवल श्रीकृष्णके कीर्तनसे ही मनुष्य सङ्गसे छूटकर परमात्माको पा जाता है। अन्य युगोंमें विविध कष्टसाध्य साधनोंसे जितना फल मिलता है, उतना ही इस युगमें हरिकीर्तनसे मिल जाता है। एक महात्मा कहते थे कि अन्य साधनोंसे फल मिलता है, पर कीर्तनसे फल, छिलका, गुठली—सबोंके ऊपर रस ही मिलने लगता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहारकी पाँचों योगभूमिकाओंके बादसे तो इसका प्रारम्भ ही होता है। चञ्चल चित्तकी सहज समाधि इसीसे शीघ्र होती है।

अन्तमें यही कहना है कि हम कलियुगी प्रजाओंको निरन्तर हरिनामकीर्तनका ही आश्रय लेना चाहिये। इसमें योग्यता-अयोग्यताका कोई प्रश्न ही नहीं है। लोग कहते हैं—अमुक ढोंगी कीर्तनकार है। मेरा खयाल है कि एक हरिनाम ही ऐसा है, जिसमें ढोंग भी परम फलद और कल्याणकारी होता है।

यमराजका न्याय

[कहानी]

(लेखक—श्रीनरेन्द्रनारायणलालजी)

मनोजने ज्यों ही आँखें खोलीं, अगल-बगल सींगधारी दो भयंकर प्रेत खड़े दिखायी दिये। रोम-रोम सिहर उठे उसके। पैर डरसे काँपने लगे और जबानपर तो मानो ताला जड़ दिया गया।

फिर मनोजने कुछ साहस बटोरा और इधर-उधर आँखें फेरनी शुरू कर दीं। वह समझ जरूर रहा था कि वह किसी बहुत बड़े दरबारमें खड़ा है। लेकिन उसकी समझमें यह नहीं आ रहा था कि आखिर वह है कौन-सा दरबार!

सामने एक विशाल सिंहासनपर नजर पड़ी; सिंहासन रत्नजटित और बहुत ही सुन्दर था और उसकी बगलमें कुछ हटकर एक दूसरा आसन भी दीख पड़ा, किंतु दोनों आसन खाली थे। पर तबतक मनोजकी सारी तन्द्राएँ समाप्त हो चुकी थीं और जब उसने सँभलकर आँखें चारों ओर घुमायीं, तब तो मारे भयके उसकी हालत खराब होने लगी; बड़ी-बड़ी कटारें लिये भयंकर प्रेत दरबारके चारों ओर खड़े थे। उधर अचानक उसकी आँखें अपनी बगलमें खड़े प्रेतपर जा टिकीं, मानो उसकी आँखें उस प्रेतसे पूछ रही हों—'भई, जल्द बताओ, यह प्रेतोंका तो दरबार नहीं?'

प्रेत मनोजका मनोभाव समझकर बोल उठा—

'घबराओ नहीं; यह महाराज यमकी पुरी है!'

'तो मैं यमपुरीमें हूँ?' हकलाते हुए मनोजने पूछा।

'हाँ, इसमें डरनेकी क्या बात है। यहाँ तो सभी जीवोंको पहले आना ही पड़ता है!'

'क्यों, मैंने कौन-सा पाप किया है भैया?'

'पाप-पुण्यका निर्णय यहीं होता है।'

'कौन करेगा मेरे पाप-पुण्यका न्याय?'

'ब्रह्मा-पुत्र भगवान् चित्रगुप्त।'

'और दण्ड-पुरस्कार कौन देगा?'

'भगवान् यम, प्रतापी भगवान् सूर्यके छोटे बेटे। यह काम उन्हींके जिम्मेका है और हम सब उन्हींके आज्ञाकारी दूत हैं।'

'कैसे हैं तुम्हारे स्वामी, भैया?'

'बड़े ही अच्छे हैं, दूधका दूध और पानीका पानी न्याय करते हैं।' उसी समय मनोजको दफ्तरकी याद हो आयी और वह बोल उठा—'भई! देखो, मुझे घर जल्द पहुँचा दो, दफ्तरका समय हो गया है। आजकल इमरजेंसी है, बड़ी कड़ाई है।'

प्रेत मुसकराकर पूछ बैठा—'यह इमरजेंसी कौन-सी बला है जी?'

मनोज बोला—'मेरे भारतपर पाकिस्तान और चीनके आक्रमणका हमेशा खतरा बना हुआ है, इसलिये भारत-सरकारने संकटकाल घोषित कर दिया है। इसमें देशकी रक्षाके लिये पूरे जोर-शोरसे काम होते हैं, जरा भी ढिलाई बरदाश्त नहीं।'

'तो जमीनवाले आपसमें ही कटते-मरते हैं?'

'क्यों, इसमें कुछ नयी बात तो नहीं, हमेशासे आदमी आपसमें इसी तरह लड़ते-मरते आये हैं! यही तो वीरताका परिचय है।'

इसी बीच दूसरे प्रेतने बड़े जोरोंमें अट्टहास किया, जिससे सारा दरबार दहल उठा। फिर मौन होते हुए वह बोला—'अरे यार, मर्त्यलोकके लिये यह नयी बात नहीं। वहाँ तो असत्य, अधर्म, अन्याय, अनाचार, अकर्म आदिका ही बोलबाला रहता है, जिसके चलते हमारी नाकमें हमेशा दम आया रहता है।'

'तो क्या तुम्हारे यहाँ पाप-पुण्य नहीं होते?' खीझते हुए मनोज पूछ बैठा।

'नहीं जी, यह लोक पाप-पुण्यसे बिल्कुल मुक्त है।'

'छोड़ो इस बकवासको। भई, मुझे घर पहुँचा दो, दफ्तरकी देर हो रही है।' मनोज चिढ़ते हुए बोला। उसी समय सहसा घंट बज उठे और शङ्खध्वनि होने लगी तथा एक दूत जोरसे बोल उठा—'सावधान! भगवान् यम और भगवान् चित्रगुप्त पधार रहे हैं।'

यम और चित्रगुप्त अपने-अपने आसनपर आकर बैठ गये। भगवान् यम थे तो सुन्दर, पर सूरत भयावनी बना रक्खी थी और भगवान् चित्रगुप्त एक वृद्ध और सम्भ्रान्त व्यक्ति प्रतीत होते थे। उनमें बुद्धि और विवेक झलक

रहे थे । सहसा हिम्मत बटोर मनोज बोल उठा—'दुहाई है भगवान् यमकी । आपके दूत मुझे पकड़ लाये । मेरे दफ्तरका समय हो रहा है और ये मुझे घर नहीं पहुँचा रहे हैं !' मनोजकी बातें सुनकर भगवान् यमने मुस्कराते हुए कहा—'चित्रगुप्त देवता ! धरतीका मनुष्य भी अजीब जीव होता है; उसे शरीर छूटनेपर भी उस शरीरका मोह बहुत दिनोंतक बना रहता है ।'

'तो क्या मेरा शरीर छूट गया ?' घबराकर मनोज पूछ बैठा । भगवान् चित्रगुप्त बोले—'कोई भी शरीरधारी यहाँ आ नहीं सकता ।' और फिर वे वहीके पन्ने उलटने लगे तथा कुछ देखने लगे । उसी बीच मनोज रोनी सूरत बनाकर बोल उठा—'हाय-हाय ! मेरे बाल-बच्चोंका क्या हाल होगा, देवता ?'

चित्रगुप्तजी बोले—'जब तुम्हारा जन्म धरतीपर हुआ था, तब तुम्हें बाल-बच्चे थे ?'

'नहीं'

'जब तुम्हारा शरीर छूटा, तब तुम्हारे किसी परिवारने तुम्हारा साथ दिया ?'

'नहीं'

'तुम्हारा जब जन्म धरतीपर हुआ, तब यह मालूम हुआ कि जन्मके पहले तुम कहाँ और किस रूपमें थे ?'

'मालूम नहीं देवता !'

'ऐसा सुन्दर मानव-तन तुम्हें मिला और तुमने कुछ परवा नहीं की; बस बाल-बच्चे, परिवार करते रहे ।'

सारी स्थितियाँ समझते हुए गम्भीर होकर मनोज बोला—'मुझे धर्म-अधर्म नहीं मालूम देवता ! किंतु हाँ, जानते भर मैंने सदा कर्त्तव्यका पालन किया, भगवान्के सभी जीवोंसे सदा प्रेम करता रहा । जहाँतक बना, भगवान्के सब जीवोंके सुख-हितका ध्यान रक्खा और भरसक पहुँचाया-किया । अपनी स्त्री छोड़कर परायी औरतोंको सदा माँ-बहन ही समझा । हाँ, भगवान्ने मुझे धन तो इतना नहीं दिया, पर चरित्ररूपी अमूल्य धन उनकी कृपासे मुझे प्राप्त रहा ।' इसी बीच भगवान् चित्रगुप्त पूछ बैठे—'भगवान्की पूजा करते थे ?'

'नहीं देवता ! मुझे अवकाश नहीं मिलता, इससे न तो मैं मन्दिर जाता और न विशेष पूजा-पाठ ही करता, परंतु मैंने कभी किसीसे घृणा नहीं की; किसीको धोखा नहीं दिया और न किसीके कोमल हृदयको कुचलनेकी इच्छा या चेष्टा ही की ।' मनोज बोलकर ज्यों ही मौन हुआ, भगवान् यम बोल उठे—'तुम बड़े अच्छे जीव मालूम होते हो ।' थथमते हुए वे फिर पूछ बैठे—'तो क्या तुमने भगवान्की कभी पूजा नहीं की ?'

मनोज गम्भीर होकर बोला—'भगवान्को तो मैंने कभी नहीं देखा, देवता ! हाँ, भगवान्के बनाये हुए तमाम जीवोंको मैं भगवान् ही समझता रहा, उनकी बनायी हुई चीजोंको देखता रहा और उन सारी चीजोंसे मैं बराबर प्रेम करता रहा और हृदयसे प्रेम करता रहा ।' जरा रुकता हुआ मनोज फिर बोल उठा—'मेरा एक साथी है भास्कर, जो कहता था कि उसे भगवान्के दर्शन होते हैं और वह हमेशा पूजा-पाठमें रहता था । तिलक लगाता और मन्दिर भी बड़ी पाबन्दीसे वह जाया करता । भगवान्की प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े जोग-जाप भी किया करता था वह । वह ऐसा कर सकता था; क्योंकि वह एक बड़ा अफसर था और काफी धन था उसके पास । उसे चिन्ता ही किस बातकी थी ।'

भगवान् चित्रगुप्त इसी बीच बोल उठे—'उसे चिन्ता थी कामिनियोंकी मनोज ! यह धर्म उसका बाहरी दिखावेका था, ढोंग था । ध्यान तो रात-दिन उसका परायी औरतोंपर ही लगा रहता और साथ ही वह बड़ा बेईमान अफसर था, लाखों रुपयेकी उसने बेईमानी की है । कितने घर उसने तबाह कर दिये । अंदरसे बड़ा स्वार्थी और क्रूर था वह ।'

'क्या कह रहे हैं, देवता ?' मनोजने चकित होकर पूछा । 'मैं ठीक कह रहा हूँ और यही कारण है कि वह रौरव नरकमें पड़ा कराह रहा है आज ।'

'तो क्या उसका भी शरीर छूट गया ?' मनोजने पूछा । इसी बीच भगवान् यम बोल उठे—'हाँ, भास्करका शरीर छूट गया ।' फिर भगवान् यम चित्रगुप्तसे बोले—'हे देवता ! मनोजके सम्बन्धमें आपकी बहीमें क्या नोट है और आपका परामर्श क्या है ?'

पन्ने उलटते हुए भगवान् चित्रगुप्त बोले—

मनोज तो भगवान्के सच्चे और सर्वोच्च सकाम भक्तोंमेंसे एक है ।'

'भगवान् यम प्रसन्न होते हुए बोले—'मनोज ! ऐसा ही है । जाओ मनोज ! तुम्हें अमरपुरीमें रहनेका आजीवन सुख दिया जाता है । तुम्हें वहाँ सारी राजसी सुख-सुविधाएँ प्राप्त होंगी; क्योंकि हमारे मापदण्डपर तुम बिलकुल खरे उतरे ।'

भगवान् यमका न्याय सुनकर मनोज थोड़ा प्रसन्न तो अवश्य हुआ, पर फिर गम्भीर हो गया । भगवान् यमने फिर पूछा—'क्यों मनोज ! तुम्हें प्रसन्नता नहीं हुई ?'

'प्रसन्न हूँ, भगवन् ! किंतु भास्करकी दुर्दशा जानकर मन दुखी हो गया ।' मनोजने उत्तर दिया ।

'कर्मोंका फल तो जीवोंको भुगतना ही पड़ेगा मनोज !'

भगवान् चित्रगुप्त बोले । मनोजका रोम-रोम काँप उठा । भगवान् यमकी ओर मुख करके मनोजने फिर पूछा—'मेरा कोई पुण्य हो और मैं भास्करके लिये उसे दे दूँ, इससे क्या भास्करका कष्ट दूर नहीं किया जा सकता देवता ?' भगवान् यमने जवाब दिया—'किया जा सकता है, मनोज ! तुम जो कुछ चाहो, वही हो सकता है ।'

'देवता !' मनोजके मुँहसे निकला और उसकी आँखोंसे आँसू झरने लगे । भगवान् यम प्रसन्न होते हुए बोले—

'तुम्हें जीवोंसे सच्चा प्रेम है, मनोज ! दुष्टका कष्ट भी तुमसे सहन नहीं हो रहा है ।' थोड़ा रुकते हुए भगवान् यम फिर बोल उठे—'रोओ मत मनोज ! तुम-जैसे भगवान्‌के भक्तकी आँखोंके आँसू बरदाश्त नहीं हो रहे हैं । जाओ, अबतकके उसके सारे पापोंके फल तुम्हारे आँसुओंसे धुल गये और वह भी तुम्हारे साथ अमरपुरीमें ही आजीवन रहेगा ।' बात समाप्त होते ही मनोजने देखा, सामने भास्कर सिर झुकाये खड़ा है । मनोजने प्रसन्न हो भास्करको प्रेमालिङ्गनमें कसते हुए कहा—'भास्कर ! हम दोनों अब आजीवन अमरपुरीमें ही रहेंगे ।' उसी समय सहसा भगवान् यम बोल उठे—'तथास्तु !'

परम सुहृद् भगवान्

(१)

किससे कैसे कब हो सकता है मेरा सचमुच कल्याण ।
नहीं जानता उसे अज्ञ मैं, पूर्ण जानते हैं भगवान् ॥
सर्वशक्तियुत, सबके ज्ञाता, सब लोकोंके ईश महान् ।
सहज सुहृद् मेरे वे जो कुछ करते मेरे लिये विधान ॥
निश्चय ही वह है मङ्गलमय सब कल्याणोंका आधान ।
हिम-आतप, वर्षा-सूखा कब किससे कैसा लाभ अमान ॥
रोग-निरोग, मरण-जीवनके सब रहस्यका उनको ज्ञान ।
इससे वे जब भी, जो कुछ भी, करते हैं रखकर अवधान ॥
भरा उसीमें है हित सबका परम चरम शुभ अभ्युत्थान ।
निर्भय मैं रहता हूँ इससे प्रभु-अनुकम्पाका कर ध्यान ॥

(२)

जान गया मैं परम सुहृद् प्रभु करते नित मेरा कल्याण ।
जान गया वे सर्वशक्तिमय हैं मेरे शुचि बन्धु महान् ॥
रहते सदा सजग, वे करते नहीं भूलकर भी कुछ भूल ।
शूल रूपमें भी देते वे प्रभु मुझको मृदु सुरभित फूल ॥
उन प्रभुका मुझपर अतिशय है सदा हृदयका निर्मल प्यार ।
मैं इससे अब पहुँच गया हूँ भय-चिन्ता-भ्रमके उस पार ॥
निर्भय नित्य, शान्त, निर्भ्रम, निश्चिन्त हुआ अब मैं मलहीन ।
रहता सदा प्रफुल्ल उल्लसित प्रभु-सेवामें ही तल्लीन ॥
मैं प्रभुका हूँ नित्य दास प्रिय, वे मेरे स्वामी बस एक ।
योग-क्षेम वहन करते सब, रखते नित्य सुरक्षित टेक ॥

पढ़ना और है, गुनना और !

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

> पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
> ढाई अच्छर 'प्रेम'के पढ़े सो 'पंडित' होय ॥

शिक्षाका दिन-दिन प्रचार बढ़ रहा है । स्कूल खुल रहे हैं, कालेज खुल रहे हैं, विश्वविद्यालय खुल रहे हैं, शोध-संस्थान खुल रहे हैं । पढ़ाईके लिये सुविधाएँ बढ़ायी जा रही हैं । बजटमें लाखों-करोड़ों रुपयोंका आयोजन किया जा रहा है । शिक्षा-आयोग बन रहे हैं । देशी, विदेशी, अन्ताराष्ट्रीय संस्थाएँ खड़ी की जा रही हैं । बच्चोंके लिये, स्त्रियोंके लिये, अधवयस्कोंके लिये पढ़ाईका प्रबन्ध हो रहा है । अज्ञानके अन्धकारको मिटानेके लिये विश्वभरके विद्वान्, राजनीतिज्ञ, समाजसुधारक ज्ञानकी जलती हुई मशालें लेकर बाहर निकल पड़े हैं । ऐसा लगता है कि कुछ ही बरसोंके भीतर विश्वसे अशिक्षा और अज्ञानका नामोनिशान ही मिट जायगा ।

बहुत खूब ।

कौन न स्वागत करेगा इस शिक्षा-अभियानका ?

× × ×

'अंगूठाछाप' लोग शेक्सपीयर और मिल्टनपर, कैंट और हैगेलपर बहस करने लगें; ज्ञान और विज्ञानकी प्रगतिपर वाद-विवाद करने लगें; राजनीति और समाजशास्त्र, इतिहास और मनोविज्ञानकी गुत्थियाँ सुलझाने लगें—इससे बढ़कर और क्या चाहिये ? अशिक्षित लोगोंका बौद्धिक धरातल ऊँचा उठे, वे भी अपनेको, समाजको, विश्वको भलीभाँति समझकर अपनी और परायी समस्याओंपर चिन्तन करने लगें, इससे अच्छा और क्या होगा ? आज जिनके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' है, कल वे ही संयुक्त राष्ट्रसंघमें उपस्थित समस्याओंपर, संसद् और विधानसभामें उपस्थित बिलोंपर अपने मत व्यक्त करने लगें, तो इसका स्वागत कौन न करेगा ?

अज्ञानान्धकारको मिटानेके लिये किया जानेवाला कोई भी आन्दोलन प्रशंसनीय है, अभिनन्दनीय है । बर्ट्रैण्ड रसेल लिखते हैं—

'Happiness is of two sorts. The two sorts I mean might be distinguished as plain and fancy, or animal and spiritual, or of the heart and of the head. Perhaps the simplest way to describe the difference between the two sorts of happiness is to say that one sort is open to any human being, and the other only to those who can read and write.'*

'प्रसन्नता दो प्रकारकी है—एक तो सीधी-सादी, दूसरी कल्पना-मिश्रित । एक पाशविक, दूसरी आध्यात्मिक, एक हृदयकी, दूसरी मस्तिष्ककी । एकका आनन्द कोई भी मनुष्य उठा सकता है, दूसरीका आनन्द केवल वे ही उठा सकते हैं, जो पढ़े-लिखे हैं ।'

मतलब नाख्वांदा लोग उस प्रसन्नतासे वञ्चित रह जाते हैं जो पढ़े-लिखे लोगोंके ही हिस्सेमें लिखी रहती है ।

जरूरी है कि प्रसन्नताका यह आनन्द हर आदमीको मिल सके । इसलिये हर आदमीको साक्षर होना ही चाहिये ।

× × ×

परंतु क्या साक्षरतासे ही विश्वकी सभी समस्याओंका निदान निकल आयगा ?

पोथी पढ़ लेनेसे ही आजकी स्थितिमें कल्पनातीत सुधार हो जायगा ?

---

* Bertrand Russell : The Conquest of Happiness, p. 93

शिक्षाका प्रचार होनेसे ही अज्ञानका पर्दाफाश हो जायगा ? मनुष्यका सर्वाङ्गीण विकास हो जायगा ?

जी नहीं। बात ऐसी नहीं है।

रस्किनने इस समस्यापर गम्भीरतासे सोचा था। वह कहता है—

"You might read all the books in the British Museum and remain an utterly 'illiterate' uneducated person; but if you read ten pages of a good book, letter by letter...... that is to say, with real accuracy,...... you are forever more in some measure an educated person.' *

ब्रिटिश म्युजियमकी सारी किताबें पढ़कर भी आप 'अशिक्षित' मनुष्य बने रह सकते हैं और किसी अच्छी पुस्तकके केवल दस पन्ने पढ़कर भी आप किसी हदतक 'शिक्षित' बन सकते हैं, बशर्ते कि आप पढ़ें ठीकसे, प्रामाणिकतासे।'

यह 'ठीकसे' पढ़ना क्या है ?

इसका नाम है—'गुनना'।

पढ़ना और है, गुनना और।

आज पढ़े-लिखे तो हजारों हैं, लाखों हैं, करोड़ों हैं, पर गुने हुए लोग कितने हैं। शायद अँगुलियोंपर गिनने-लायक मुश्किलसे निकलेंगे।

× × ×

आजसे ६६ साल पहले स्वामी रामतीर्थने अपने 'अलिफ्' नामके रिसालेमें एक लेखमें इसका एक बढ़िया उदाहरण दिया था।

बचपनमें जब कौरव और पाण्डव एक साथ पढ़ते थे तो एक दिन उन सबकी परीक्षा ली गयी। किसी विद्यार्थीने आधी किताब सुना दी, किसीने पूरी। पर युधिष्ठिरसे पूछा गया तो उसने कहा—'मैंने तो केवल दो वाक्य याद किये हैं।'

परीक्षक महाशयको अत्यन्त क्रोध हो आया। वे बोले—'अरे दुष्ट! तू तो सबसे बड़ा है और अभीतक सिर्फ दो वाक्य याद किये। यह कैसी सुस्ती है। तुझे लज्जा नहीं आती ? चुल्लूभर पानीमें डूब मर।'

परीक्षकने इतनेसे ही बस न की। लगे चपत-पर-चपत मारने! बेचारे राजकुमारके कपोल लाल हो गये, पर वाह रे राजकुमार! उफ् तक नहीं की। शान्त खड़ा रहा।

यह देख परीक्षकको अत्यन्त विस्मय हुआ। सोचा कि आज दुर्योधनको किसी अपराधपर धमकाना चाहा था तो वह पगड़ी उतारनेको तैयार हो गया था। भगवन्! यह कैसा राजकुमार है कि इसे पीटते-पीटते अधमरा कर दिया है और इसने चूँतक नहीं की। प्रसन्नवदन खड़ा है।

अब युधिष्ठिरका हाल सुनिये। अक्षर-परिचय होनेके बाद पहला ही वाक्य गुरुजीने बताया था—'क्रोध मत करो।'

सुशील बालक तभीसे एकान्तमें जाकर उसपर विचार करने लगा। कानोंसे सुने पाठको रोम-रोममें उतारने लगा। बेचारे युधिष्ठिरको उस शिक्षा-कलाकी खबरतक न थी, जिसकी बदौलत साधारण बाबू और पण्डित लोग विद्यारूपी गङ्गाकी नहर अपने मस्तिष्क-पर इस सफाईके साथ बहा देते हैं कि रुड़कीवाली नहरके साथ एक बूँद भी पुलसे नीचे गिरने नहीं पाती। ऊपर-ऊपर तो गङ्गा बहती हैं और निचला हिस्सा सूखा-का-सूखा पड़ा रहता है। देखनेमें तो सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डालीं, परीक्षाओंमें पूरे-पूरे नम्बर हासिल किये, विश्वविद्यालयमें पारितोषिक और पदक प्राप्त किये, किंतु भीतर एक बूँद भी न पड़ने दी। आचरणमें कुछ प्रवेश न होने दिया। बेचारा युधिष्ठिर इस कलासे बिल्कुल अपरिचित था। उसने जो कुछ पढ़ा, झट उसके हृदयमें उतरने लगा।

*. Ruskin : Sesame and Lilies. P. 14

उसके विचार-क्रमका रूप यह था—

'क्रोध मत करो'—भला क्योंकर ? हमें तो क्रोध आ जाता है। क्यों आता है ? उचित है या अनुचित ? क्रोधके बिना काम चल सकेगा या नहीं ? यदि क्रोध न किया तो नौकर लोग ढीठ हो जायँगे, काम अच्छा न करेंगे, रोब उठ जायगा, प्रबन्ध बिगड़ जायगा, रसोई समयपर न तैयार होगी । आदि ।

क्रोधको छोड़नेमें कठिनाइयाँ तो होंगी, पर क्या क्रोधको छोड़ना असम्भव है ? यदि असम्भव होता तो गुरुजी ऐसा उपदेश ही न देते । शास्त्र ही ऐसा अनुशासन क्यों देते ?

अब क्या करें ? क्रोध तो आ ही जाता है । तो क्या यह उचित होगा कि मान तो लिया जाय कि क्रोध करना अनुचित है, पर समयपर क्रोध आ जाय तो आ जाने दें ? नहीं, यह तो छल है । गुरु और शास्त्रके साथ धोखेबाजी है । मुँहसे 'हाँ' कर लेना और अमलमें 'न' लाना ।

अबसे दृढ़ संकल्प करते हैं कि 'क्रोधको पास न फटकने देंगे ।'

क्रोध क्यों उत्पन्न होता है ? प्रायः जब कोई काम बिगड़ता है या कोई चीज खराब हो जाती है तो क्रोध आता है । अरे मन ! काम तो एक बार बिगड़ चुका । तू उसपर चित्तको क्यों बिगाड़ता है ? चीज तो खराब हो गयी, होगी दस, बीस, पचास, सौकी, पर उसके लिये चित्त-जैसी अनमोल चीजको क्यों खराब कर बैठता है ? आनन्द मेरा जन्मजात स्वत्व है । किसी सांसारिक वस्तुके लिये इस जन्मजात स्वत्वको क्यों खोऊँ ?

राजकुमारोंके यहाँ रिवाज तो है कि बात-बातपर उरदकी पीठीकी तरह ऐंठना, किंतु गुरुजीका उपदेश है—'शान्त रहो, मनको हिलने ही न दो ।' गुरुजीकी इस आज्ञाका मैं पालन करूँगा, चाहे सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो ।

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते युधिष्ठिरने उन तमाम मौकोंको याद किया, जहाँ उसकी शान्तिके पैर फिसला करते थे और अपने-आपको खूब समझाया—'ऐ अनजान मन, अबतक जो हुआ सो हुआ । आगेसे ऐसे कोमल समयोंपर सँभलकर चलना । जब कोई कुछ कटुवाक्य कहे, गाली दे, काम बिगाड़ दे, हमारे खिलाफ साजिश रचे अथवा जब चित्त अस्वस्थ हो, तब तू शान्त रहा कर ।'

इसके पश्चात् युधिष्ठिरने बहुत बार जान-बूझकर अपने-आपको ऐसे स्थानोंपर पहुँचाया, जहाँ दुर्योधन आदिने उसे छेड़ा और दुःख देना चाहा, किंतु युधिष्ठिरने हर बार 'क्रोध मत करो'—इस पाठका व्यावहारिक अनुभव सफलताके साथ किया । जब क्रोध बिलकुल छूट गया तो चित्तमें चैन रहने लगा । आनन्द और प्रसन्नताने रंग जमाया, मानो मुफ्तमें खजाने हाथ आ गये । अनुभवने युधिष्ठिरको यह सिद्ध कर दिखाया कि सब लोगोंका यह ख्याल गलत है कि 'क्रोधके बिना काम नहीं चल सकता ।'

परीक्षक महोदयने जब देखा कि युधिष्ठिरपर मारका कोई असर नहीं हो रहा है, तब वे समझे—'ओहो ! यह लड़का तो हमारा भी गुरु है । यह हमको सिखा रहा है कि पढ़ना किसको कहते हैं ?'

उनकी आँखोंमें आँसू डबडबा आये । बच्चेको गोदमें लेकर वे फूट-फूटकर रोने लगे ।

इल्म चंदां कि बेशतर ख्वानी ,
चूं अमल दर तो नेस्त नादानी ।

'तू चाहे जितनी विद्या पढ़ जाय, यदि उसपर अमल नहीं है, तो सिर्फ नादानी है ।'

× × ×

तो, इसका नाम है पढ़ना, इसका नाम है गुनना।

लोग पढ़ते हैं ऊँचा पद पानेके लिये। धन कमानेके लिये। लोगोंसे प्रशंसा पानेके लिये। ऊँचा रुतवा पानेके लिये।

कुछका यह हौसला पूरा हो जाता है।
पर यही तो जीवनका लक्ष्य है नहीं।
यही तो जीवनकी प्रगति है नहीं।

रस्किनके शब्दोंमें जीवनकी प्रगतिकी व्याख्या यह है—

'He only is advancing in life, whose heart is getting softer, whose blood warmer, whose brain quicker, whose spirit is entering into Living Peace.'

'केवल उसीका जीवन प्रगतिकी ओर जा रहा है, जिसका हृदय दिन-दिन मुलायमसे मुलायम होता जा रहा है, जिसके रक्तकी ऊष्मा बढ़ती जा रही है, जिसका मस्तिष्क दिन-दिन तीक्ष्ण होता चल रहा है और जिसकी आत्मा स्थायी शान्तिकी दिशामें प्रवेश करती आ रही है।'

× × ×

शिक्षाका लक्ष्य, विद्याका लक्ष्य है—मुक्ति।

'सा विद्या या विमुक्तये।'

हम नाना प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त न हुए, मानव मानवको बाँटनेवाले कटघरोंमें ही कैद बने रहे तो धिक्कार है हमारी शिक्षापर, धिक्कार है हमारी विद्यापर।

हमारे यहाँ तो इसीलिये कहा है कि एक ही शब्द पढ़ लो—ढाई अक्षरका छोटा-सा शब्द है—'प्रेम'। बस, बेड़ा पार है।

मानव-मानवसे प्रेम। पशु-पक्षीसे प्रेम। कीट-पतंगसे प्रेम। पेड़-पौधोंसे प्रेम। चर-अचरसे प्रेम। सृष्टिसे प्रेम, सृष्टिकर्तासे प्रेम।

जीवनकी सार्थकता इसीमें प्राप्त हो जायगी। इसके अलावा न कुछ पढ़नेकी जरूरत है, न कुछ गुननेकी?

सच्चा शिक्षित विद्वान् कौन है?

जिसमें नहीं विनय, ऋजुता, तप, त्याग, मधुर विनम्र व्यवहार।
जिसमें नहीं मधुर हित वाणी, सत्य, सुसंयम, शुभ आचार॥
वचन असत्य परुष परहित-नाशक, मन भरा दर्प-अभिमान।
हिंसा-वैर-परायण, काम-क्रोध-लोभ-भय-दंभ-निधान॥
भक्ष्याभक्ष्य-विचार त्याग जो करता तामस भोजन-पान।
साक्षर होकर भी वह नर-पशु मानवता-विरहित अज्ञान॥
जिसमें दया, प्रेम, सेवा, तपका लहराता सिन्धु महान्।
अक्षरहीन भले हो, पर वह है मानव शिक्षित विद्वान्॥
व्यर्थ, अनर्थपूर्ण जीवन अपवित्र असुर-पशुका कर त्याग।
दैवी सम्पद्का सेवन कर बनो सुशिक्षित शुचि बड़भाग॥

पुण्य स्मरण

(लेखक—श्रीमाधव)

काशी हिंदू-विश्वविद्यालय । जुलाई १९२६ । हमलोगोंने आश्चर्यके साथ देखा कि हमारे विश्वविद्यालय-के अंगरेजी विभागमें एक अंगरेज प्रोफेसर आ गये हैं। बड़ी मनोज्ञ मूर्त्ति, खूब कद्दावर लगभग साढ़े सात फीट ऊँचे, बड़ी-बड़ी नीली आँखें, सामनेके बाल खल्वाट होनेका संकेत देते हुए, उन्नत प्रशस्त ललाट, सुग्गेकी ठोरकी तरह नुकीली नाक, रेशमी कमीजपर काली फहराती हुई टाई । मोटर साइकिलपर होते तो यह टाई और भी फरफर फहराती । शोभाका क्या कहना था । हमलोग बी०ए०में आ गये हैं । नवागन्तुक प्रोफेसरका नाम है—रोनाल्ड निक्सन । हमलोगोंको आपने चार्ल्स लैंब पढ़ाना शुरू किया । यह पढ़ाना क्या था तन्मयता-का तिलिस्म था । लैंब एक अभागा लेखक हो चुका है—सर्वथा अभागा । इंडिया ऑफिसमें अन्ततक किरानीगिरी करता रहा । घरमें एक पगली बहन थी एलिया । वह स्वयं भी मस्तिष्क-विकारसे यदा-कदा पीड़ित हो जाया करता था और पत्थरपर सिर पटकने लगता था । एक बार लैंबने सपनेमें देखा कि उसे कई बच्चे हो गये हैं जिनका सपनेमें ही नामकरण भी कर दिया । नींद खुली तो उसे बड़ी ग्लानि हुई; क्योंकि वह था कुँआरा, आजीवन अविवाहित । उसने अपने सपनेका जो चित्र 'ड्रीम चिल्ड्रेन' में खींचा है वह किसीके भी हृदयको हिला देनेवाला है । प्रो० निक्सनसे इसी लैंबको लेकर प्रथम-प्रथम साक्षात्कार हुआ । पढ़ानेकी शैली इतनी मोहक और चित्ताकर्षक कि हम सभी मन्त्रमुग्ध उनकी प्यारभरी मीठी-मीठी बातें सुनते अघायें ही नहीं । इच्छा होती कि पहली घंटीसे अन्तिम घंटीतक बस इन्हींका क्लास चलता रहे ।

इनके विश्वविद्यालयमें आते-ही-आते जन्माष्टमीका पर्व आया । इस पर्वपर विश्वविद्यालयमें कई दिनोंतक लगातार कथा-वार्ता, नाटक, संगीत आदिका सुललित सुमधुर कार्यक्रम चलता था । स्वयं पूज्यचरण पुण्यश्लोक प्रातःस्मरणीय चिरवन्दनीय महामना श्रीमालवीयजी महाराज रेशमी पीताम्बर पहनकर, खड़ाऊँ पहने विश्वविद्यालयमें आते और श्रीमद्भागवतसे श्रीकृष्णजन्मकी कथा भावभीने शब्दोंमें सुनाते । उसी अवसरपर श्री-कृष्णजन्मोत्सवका अभिनय भी था; जिसमें वसुदेवजीकी भूमिकामें प्रो० निक्सन थे । इस अभिनयके माध्यमसे वे छात्रोंके अति निकट आ गये, लगा जैसे युगोंकी आत्मीयता हो; सर्वथा अपने लगे—सखा, सुहृद्, अन्तरङ्ग मित्र ।

परंतु यह अन्तरङ्गता और घनीभूत होनेवाली थी । प्रो० निक्सन रहते थे नगवामें गङ्गा-किनारे 'राधा-निवास' में, जो लखनऊ विश्वविद्यालयके तत्कालीन उपकुलपति डॉ० ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्तीकी कोठी थी—दानवीर बाबू शिवप्रसाद गुप्तके 'सेवा-उपवन' के ठीक सामने । 'राधा-निवास' गङ्गातटपर है और सावन-भादोंमें तो 'गङ्गायां घोषः' ही हो जाता है । प्रोफेसर निक्सन दोनों शाम गङ्गास्नानके लिये धोती-गंजी पहने नंगे पाँव आते थे और उनका स्नान काफी देरतक चलता था; क्योंकि वे तैरनेके खूब शौकीन थे । तैरना ही एक प्रकार उनके लिये नशा था । मैं भी तैरनेका बेहद शौकीन । फिर 'दोस्ती' होनेमें क्या देर लगती ? हाँ—'दोस्ती' शब्दका साभिप्राय प्रयोग मैं कर रहा हूँ; क्योंकि आरम्भसे ही वे एक सच्चे दोस्तकी तरह पेश आये । वैशाख-जेठमें हम दोनों प्रायः तैरते हुए उस पार रामनगर घाट पहुँच जाते और फिर तैरते हुए ही लौटते । सबेरे तो कुछ कम; परंतु शामको दो-तीन घंटेका तैरना स्वाभाविक

हो गया था । रेशमी कुरता, धोती, चप्पलमें वे बड़े सुहावने लगते; क्योंकि उनकी सिंदूरी गोराई खूब देखनेको मिलती । तैरनेका उन दिनों नशा-सा था और गङ्गा पार कर जाना जैसे एक खिलवाड़ था । एक दिन भूलसे खादीकी भारी भरकम धोती पहने मैं तैरने लगा, तीन चौथाई पार कर गया कि लगा डूबने । इतनेमें ही हमारे परम शुभचिन्तक प्रो० निक्सनने अपने कंधेका सहारा देकर पार लगाया, नहीं तो, उस दिन जै सीताराम हो गया होता और 'गङ्गालाभ' में क्या देर थी ।

प्रो० निक्सन डॉ० चक्रवर्तीके परिवारमें एक सदस्यकी तरह रहने लगे थे । इसे लेकर तरह-तरहकी अफवाहें फैलने लगी थीं । लोगोंको झूठी-झूठी अफवाहें फैलानेमें एक मजा आता है । एक अफवाह यह थी कि डॉ० चक्रवर्तीकी कन्या मोतीरानीसे प्रोफेसर निक्सन शादी करना चाहते हैं इसीलिये अबतक अविवाहित हैं । और भी कुछ गंदी बातें यारोंने फैलायीं; परंतु वहाँ तो एक नये जीवनका निर्माण हो रहा था जो सर्वथा दिव्य और अलौकिक था । जिसकी जैसी दृष्टि उसके लिये वैसी सृष्टि । राग-द्वेष-मोहसे पीड़ित मानव इनसे परेका दृश्य कैसे देख पाये ? कभी-कभी शामको गङ्गा-तटपर डॉ० चक्रवर्तीका पूरा परिवार, जिसमें उनकी धर्मपत्नी मोनिका चक्रवर्ती और कन्या मोतीरानी होती, हरिनाम-संकीर्तनके लिये आ जाता और प्रो० निक्सन भी उसमें होते । हारमोनियम-झाँझ-खोल-मृदंगपर—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

—का तुमुल उद्घोष गङ्गाकी लहरोंसे मिलकर एक परम पावन अमृत-वर्षामें हम सभीको नहला देता । प्रायः प्रत्येक एकादशी तथा अमावस्या और पूर्णिमाको यह संकीर्तन हम छात्रोंके लिये विचित्र आकर्षण और उत्कट प्रतीक्षाका विषय होता । यह संकीर्तन श्रीहरिहरबाबाकी नावसे सटे गङ्गा-तटपर हुआ करता था । इसमें कभी-कभी डेढ़-दो सौ व्यक्ति उपस्थित होते । विशेषतः पूर्णिमाकी चाँदनीमें तो ऐसी अमृतवर्षा होती कि शब्दोंमें उसका वर्णन करनेकी शक्ति नहीं । अभी प्रो० निक्सन प्रोफेसर ही थे ।

परंतु जादू वह जो सिरपर चढ़कर बोले । हरिनामके दिव्य रसमें वे पग चुके थे । प्रभु जिसे वरण करता है उसके रास्तेके सारे विघ्नों—बाधाओंको स्वयं हटा देता है । यही उसका बाना है, यही उसकी रीति है । प्रो० निक्सन एक बार वृन्दावन गये और श्रीराधा-रमणके श्रीविग्रहकी जो झाँकी मिली उसने उन्हें सर्वथा आत्मसात् कर लिया । उन्होंने मोनिका चक्रवर्तीसे, जो अब 'यशोदामाई' थी, विधिवत् गौडीय वैष्णवी दीक्षा ली—गलेमें तुलसीकी दोहरी माला, मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र गौड़ीय गोपीचन्दन, हाथमें जपमालिका, काषाय-वस्त्र, लम्बी कमरतक लटकती जटा, पैरोंमें काठकी चट्टी । लगा जैसे 'मीराँ' आ गयी । उन्होंने पूज्य मालवीयजीको लिख भेजा कि 'अब मुझसे अध्यापकी नहीं हो सकेगी, क्षमा करते हुए मुझे विश्वविद्यालयकी सेवासे मुक्त कर दें ।' परंतु महामना मालवीयजी उन्हें फिर भी अध्यापक-रूपमें काम करते रहनेके लिये आग्रहशील ही रहे । इस नये वेशमें प्रथम-प्रथम जब प्रो० निक्सन, अब श्रीकृष्णप्रेम, काशी पधारे तो विश्वविद्यालयके प्राच्य-विद्याविभागके हालमें छात्रों-अध्यापकोंकी एक विराट् सभामें उन्होंने अपने 'चाण्डाल शरीर'की चर्चा करते हुए—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

—की व्याख्या प्रस्तुत की थी और अन्तमें श्रीकृष्णके विरहमें धाड़ मारकर फफक-फफककर रोने लगे तो जैसे आँसुओंकी यमुना बहने लगी । उनका समस्त उत्तरीय आँसुओंसे भीग गया था । यह है 'जाहे लगन लगी घनस्याम की' का ज्वलन्त उदाहरण, आजके युगमें और एक सर्वथा विदेशीके जीवनमें । परंतु श्री-

कृष्णके लिये स्वदेश-विदेश क्या ! उनकी प्रीतिके तीर फिर किसे लग जायँ कौन कह सकता है !

अब श्रीकृष्ण-प्रेमके लिये जनसंसद् अथवा लोकालय-में रहना कठिन हो गया। जब कभी श्रीकृष्णका नामोल्लेख होता प्रेमाश्रुओंका प्रवाह उमड़ आता। खामखा लोग उन्हें छेड़ते। अतएव अलमोड़ेसे कुछ दूर मिर्तोल पनुआनौलामें एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर बना, भगवान् श्रीकृष्णकी एक परम मनोज्ञ मूर्तिकी स्थापना हुई—सर्वथा शान्त एकान्त वन्य प्रदेशमें और स्वयं श्रीकृष्ण-प्रेमने अष्टयाम सेवाका मधुर कार्य अपने लिये माँगा। माँ साथ थी। मन्दिरमें झाड़ू-बुहारूसे लेकर भगवान्का शृङ्गार, रागभोग, मङ्गला आरतीसे लेकर शयनकी आरतीतक स्वयं श्रीकृष्णप्रेम सारी सेवामें एक दिव्य आनन्दका अनुभव करते। एक संस्कृत पाठशाला खुली जिसमें छात्रोंको पढ़ानेसे लेकर उनके लिये भोजन बनानेका काम स्वयं श्रीकृष्ण-प्रेम करते। गंगोत्रीके जो यात्री अथवा उस वन्यप्रदेशके जो व्यक्ति अस्वस्थ हो जाते उनकी सेवा-शुश्रूषाके लिये एक औषधालय भी चलता। साथ ही अपने साधक जीवन-के अनुभवप्रकाशमें श्रीकृष्णप्रेमने दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे—'दि योग ऑव दि कठोपनिषद्' और 'दि योग ऑव दि भगवद्गीता।' ये दोनों ग्रन्थ साधनाकी दृष्टिसे अनुपम हैं और एक सच्चे साधकको साधनपथमें आनेवाले कष्टों, कठिनाइयों, विघ्न-बाधाओंको पारकर भगवद्राज्यमें प्रवेश करानेमें परम सहायक हैं; क्योंकि उनमें पाण्डित्यका प्रदर्शन नहीं; अनुभवकी सुषमा और ज्योतिर्मयी ऊष्मा है। काश, इन दोनों ग्रन्थोंका हिंदी-अनुवाद हो जाता। अंग्रेजीके आध्यात्मिक साहित्यमें श्रीकृष्णप्रेमके इन दोनों ग्रन्थोंकी बड़ी महिमा है और देश-विदेशके उच्चकोटिके साधक इन्हें बड़ी श्रद्धा और प्रीतिके साथ अपने स्वाध्याय और नित्य पाठमें रखते हैं। मैंने डा० भगवानदासको इन ग्रन्थोंमें निमग्न होते देखा है और स्वनामधन्य महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज प्रायः इनकी चर्चा करते हैं।

एक बार श्रीकृष्णतत्त्वपर मेरी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णप्रेमने जॉन कीट्सकी निम्नलिखित पंक्तियोंमें किंचित् सुधार संशोधनकर थोड़ेमें बतलाया था। कीट्सकी पंक्तियाँ हैं—

Beauty is Truth, Truth Beauty. That is all ye know and all ye need to know.

श्रीकृष्णप्रेमने इन पंक्तियोंको यों बदल दिया—

Krishna is God, God Krishna. That is all ye know and all ye need to know.

'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' में उनकी अटूट आस्था थी और इसी निष्ठाके साथ आठ पहर चौंसठ घड़ी आनन्दकी परमावस्थामें वे निमग्न रहते। इस स्थितिसे बाहर आनेकी प्रवृत्ति सदाके लिये समाप्त हो गयी थी, इसलिये प्रवचन आदिमें वे कभी भी प्रवृत्त नहीं हुए; यों हरिनामकीर्तनमें आरम्भमें कभी-कभी कहीं-कहीं जाया करते, फिर वह भी बंद हो गया। वे अपने अंदर ही श्रीकृष्णप्रेमके आनन्दमें डूबते गये और डूबते ही गये, एकदम डूब गये। कितना विलक्षण और सर्वग्रासी था श्रीकृष्णके प्रति प्रेम श्रीकृष्णप्रेमका।

एक बार गुरुतत्त्वपर मेरी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए 'श्रीचैतन्यचरितामृत'की दो पंक्तियाँ उद्धृत की थीं—

> **किंवा न्यासी, किंवा विप्र, शूद्र किंवा हय।**
> **श्रीकृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥**

भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा, पूर्ण प्रीति उन्हें प्राप्त थी—यह उनके जीवनकी एक-एक साँससे प्रकट था। वे सचमुच श्रीकृष्णके सिवा न कुछ जानते थे, न सुनते थे, न देखते थे—**'कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने'** उनका सारा जीवन मधुसूदन स्वामीकी इस एक पंक्तिकी जीवन्त व्याख्या था।

जो व्यक्ति कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयकी उच्चतम शिक्षा प्राप्तकर द्वितीय महायुद्धमें अपनी सेवाएँ अर्पितकर हवाई जहाजसे विषैले बम गिराया करता था वही भगवान् बुद्धकी 'करुणा'से प्रेरित होकर सिलोन आया, फिर भारतवर्षमें उसी सत्यकी शोधमें आया, लखनऊ विश्वविद्यालयमें अंगरेजीका प्रोफेसर हो गया; परंतु अंदरकी बेचैनी उसे काशी—गङ्गास्नान और हरिनामके लिये खींच लायी और फिर वृन्दावनकी दिव्य लीलापर जिसने अपनेको निछावर कर दिया, जिसका जीवन सेवाकुञ्ज बन गया—वही विश्वको प्रेमका पाठ पढ़ाकर अपने प्रेमाराध्यमें एक हो गया, एकाकार हो गया। श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णप्रेम दो हैं ही कहाँ ?

तुलसीके शब्द

(लेखक—डाक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू एम्० ए०, डी० लिट्०)

पिछले दो लेखोंमें यह दिखाया गया है कि आने-जाने-चलनेकी गतियोंका बोध कविवर तुलसीदासजी एक संकेत-द्वारा करते हैं। जहाँ गतिकी क्रिया पहले आती है और गमन-स्थान पीछे वहाँ सामान्यसे शीघ्रतर गतिका बोध होता है। जैसे—

आवहु बेगि चलहु बन भाई।

इसका अर्थ है कि जल्दी आओ और भाई ! वनको जल्दी चलो। वनको चलनेकी शीघ्रता 'चलहु बन' से कविवरने स्पष्ट की है। यहाँ 'चलहु' क्रिया पहले है और जहाँ जाना है उस स्थानको, 'बन' को क्रियाके बाद लिखा है। क्रिया और गमन-स्थानका यह क्रम शीघ्रतासूचक है। मिथिलासे जो दूत अवध गये थे उनकी गतिमें भी इसी प्रकार शीघ्रताका संकेत है।

पहुँचे दूत रामपुर पावन।

यहाँ क्रिया 'पहुँचे' पहले है और पहुँचनेका स्थान 'रामपुर' बादमें। शंकर भगवान्‌ने जब यह संकल्प कर लिया कि—

एहि तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।

तब इस संकल्पको शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित करनेकी इच्छा उनके जाने—

चले भवन सुमिरत रघुबीरा।

और उनके कैलास पहुँचने—

बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा।

और उनके वटवृक्षके नीचे बैठने—

बैठे बटतर करि कमलासन।

—इन तीनों बातोंसे स्पष्ट है, जहाँ तीनों क्रियाएँ 'चले' और 'पहुँचे' और 'बैठे' पहले लिखी गयी हैं और तीनों स्थान अर्थात् 'भवन' और 'कैलासा' और 'बटतर' क्रियाओंके बादमें प्रयोग हुए हैं।

यह क्रम-संकेत अन्य प्रकारकी क्रियाओंके सम्बन्धमें भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा।

यहाँ उठाना पहले कहा और धनुष बादमें, जिसका अर्थ यह है कि शीघ्रतासे धनुष उठाया।

एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।

यहाँ 'उतरे' पहले और 'सागर तीर' बादमें, कहकर सागरके किनारे उतरनेमें शीघ्रताका बोध कविवरने हमें कराया। इसी प्रकार भानुप्रतापके प्रसंगमें तापसने—

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता॥

और इसके बाद—

राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि॥

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥

इस प्रसंगमें 'पहुँचाएसि', 'राखेसि' और 'परेउ'—ये तीनों क्रियाएँ पहले प्रयोग की गयी हैं और स्थानके नाम अर्थात् 'निकेता', 'गिरिखोह' और 'सेज'का बादमें उल्लेख है। इस क्रमके कारण इन तीनों कार्योंमें शीघ्रगति स्पष्ट होती है।

श्रीरामचरितमानसमें क्रियाका एक और प्रयोग विचारणीय है। जहाँ कविवर तुलसीदासजी सकर्मक क्रियाके प्रयोगमें कर्म पहले रखते हैं और क्रिया बादमें, वहाँ स्थिति या वातावरण या वक्ताकी चित्तवृत्ति साधारण होती है और

अगर कोई काम करनेकी आज्ञा दी गयी है या कोई प्रार्थना की गयी है तो उस कामके करनेमें किसी प्रकारकी शीघ्रताकी ध्वनि नहीं निकलती। परंतु यदि सकर्मक क्रियाके प्रयोगमें पहले क्रियाका प्रयोग हुआ है और उसके बाद कर्मका तो इसका अर्थ यह होता है कि आदेश या उपदेश या प्रार्थनामें शीघ्रताका बोध है या स्थिति या वातावरणमें भावका उद्वेग है, भाव-विह्वलता है। उदाहरणार्थ भरत-भरद्वाज-मिलन-प्रसंगमें मुनिवरने भरतजीकी पहुनाईके निमित्त 'सुचि सेवक सिष' अपने पास बुलाये और उनसे कहा—

कंद मूल फल आनहु जाई।

इस आज्ञामें कोई विशेषता नहीं है, कोई अत्यावश्यकता या शीघ्रताकी ध्वनि नहीं है। यह सामान्य आतिथ्य-धर्म-निर्वाहकी बात है। जो विशेष आतिथ्य मुनिवरको करना है वह ऋद्धि, सिद्धि, अणिमादिकद्वारा करेंगे। यह कन्द-मूल-फल लानेकी मुनिवरकी आज्ञा एक सामान्य आज्ञा है। यहाँ कर्म पहले लिखा है और क्रिया उसके बाद। इसके विपरीत कपटमृग-प्रसंगमें जब सीताजीने मनिरचित कनक देहवाले चमकते-झिलमिलाते अति विचित्र मृगको देखा, जिसका एक-एक अङ्ग सुमनोहर था, तो वे उसकी परम रुचिर मृगछालाके पानेको विह्वल हो उठीं। कविवर कहते हैं—

आनहु चर्म कहति बैदेही।

वैदेही इसकी मृगछाला पानेके लिये इतनी उत्सुक थीं कि करुणानिधान उनकी बात न टाल दें या मृगछाला लानेमें देर न करें इसलिये आर्त होकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी-को पाँच प्रकारसे सम्बोधन किया, उन्होंने उनको 'देव', 'रघुबीर', 'कृपाला', 'सत्यसंध' और 'प्रभु'—कहकर प्रार्थना की। सीताजीकी विह्वलता, उनकी मृगछाला पानेकी उत्सुकता, उनकी इच्छापूर्तिकी शीघ्रता—ये सब कविवरने पहले क्रिया 'आनहु' और इसके बाद कर्म 'चर्म' रखकर हमें समझायी है।

हनुमान्‌जी अशोक-वाटिकामें पहुँच चुके हैं। माता जानकीजीको प्रभुका संदेश और मुद्रिका दे चुके हैं। जगज्जननीका शुभाशीर्वाद पवनकुमारको मिल चुका है। प्रसन्नचित्त होकर माता जानकीजी हनुमान्‌जीसे कहती हैं—

रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु।

हनुमान्‌जी माता जानकीजीकी फल खानेकी आज्ञा पाकर संतुष्ट हैं। वातावरणमें किसी प्रकारकी विह्वलता नहीं है। इस साधारण स्थितिकी सूचना कविवरने हमको इस पंक्तिमें पहले कर्म अर्थात् 'फल' और तत्पश्चात् क्रिया 'खाहु' प्रयोग करके दी है। इसके विपरीत अंगद-रावण-मिलन-प्रसंगमें जब पृथ्वी-पर गिरे हुए रावणके कुछ मुकुट अंगदने श्रीरामचन्द्रजीके पास भेज दिये तब राक्षसपति बड़ा क्रुद्ध हुआ। कविबर कहते हैं कि—

'सकोपि दसानन सब सन कहा रिसाइ।'

कि बंदरोंको पकड़ लो और पकड़-पकड़ मार डालो और—

खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु।

यहाँ वातावरण क्रोध भरा है, घृणा भरा है, प्रति-शोधकी कटु भावनासे पूर्ण है। रावणकी आज्ञामें उसके पालनकी शीघ्रताका भाव है। यह बात कविवरने पहले क्रिया 'खाहु' और उसके बाद कर्म 'भालु कपि' का प्रयोग करके हमको सूचित की है।

यह आवश्यक नहीं है कि जब भी आज्ञा दी जाय वह शीघ्रतासूचक हो। उदाहरणार्थ सुग्रीवने करुणानिधान प्रभुसे कहा कि—'दशाननका भाई आपसे मिलने आया है। यह निशाचर कपटी है। इसका कुछ भरोसा नहीं।' इसपर प्रभुने कपिराजको समझाया-बुझाया और आज्ञा दी—

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।

इस आज्ञामें कोई शीघ्रतासूचक बात नहीं है। यह एक सामान्य आज्ञा है। इसलिये कविवरने पहले कर्म और उसके बाद क्रियाका प्रयोग किया है। इसी प्रकार रावणवधोपरान्त जब माता जानकीजी सुन्दर पालकीमें प्रभुके पास लायी जा रही थीं तब माताके दर्शनकी लालसा असंख्य वानर-भालुओंको हुई। अन्तर्यामी कृपालु प्रभु सबके मनका भाव समझ गये। उन्होंने आज्ञा दी—

सीतहि सखा पयादें आनहु।

यह आज्ञा सबके लिये आनन्ददायिनी हुई; परंतु इस आज्ञामें शीघ्रताका बोध नहीं है। इस कारण कविबरने पहले कर्मका प्रयोग किया है और उसके बाद क्रियाका जो सामान्य स्थितिका सूचक है। उदाहरणार्थ नीचे कुछ चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं जिनमें आदेश दिया गया है और जो शीघ्रतासूचक है। इनमें पहले क्रियाका प्रयोग किया गया है और उसके बाद कर्मका। जिस क्रमसे कविवर तुलसीदासजी शीघ्रताका अर्थ प्रकट करते हैं।

आनहु सकल सुतीरथ पानी।
करहु कतहुँ अब ठाहर टाटू।
तजहु सोच मन आनहु धीरा।
पठवहु जहँ तहँ बानर जूथा।
आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा।

यही नियम, उपदेश और प्रार्थनामें भी लागू है। जिस उपदेश या प्रार्थनामें शीघ्रता है जैसे—

करहु राज परिहरहु गलानी।
अस बिचारि उर छाड़हु छोहू।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात।
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी॥
करहु सो बेगि दास मैं तोरा।
करहु चाप गुरुता अति थोरी॥
नाथ करहु बालक पर छोहू।
कीजिअ गुरु आयसु अवसि।
नाथ राम सन तजहु बिरोधा।
पावक प्रगट करहु तुम बेगी॥

यहाँ पहले क्रियाका प्रयोग हुआ है और बादमें कर्मका। परंतु कभी-कभी उपदेश या प्रार्थनामें शीघ्रताका बोध नहीं होता। जैसे—

जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा।
अब सोइ जतन करहु मन लाई॥

यहाँ पहले कर्म प्रयोग हुआ है और उसके बाद क्रियाका जो साधारण या सामान्य स्थितिका सूचक है। ऐसे सामान्य स्थितिके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

संत असंत मरम तुम्ह जानहु।
पाय पुनीत पखारन लागे॥
सिय महिमा रघुनायक जानी।
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा॥
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा।
सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए।

ऐसी साधारण वातावरणकी स्थिति वक्ताकी शान्तिपर भी निर्भर करती है। जैसे—

धीरज धरहु मातु बलि जाई।
सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ॥
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव।

अथवा उसके संकोचपर। जैसे—

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी॥
मोर मनोरथ जानहु नीकें।

एक और प्रयोग है जहाँ यह साधारण स्थितिका संकेत पाया जाता। वह है किसी मान्य सत्यके उल्लेखमें जहाँ कर्म पहले आता है और क्रिया बादमें। जैसे—

अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया।
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। अस परतीति तजहु जनि भोरें॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु।
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥

परंतु जहाँ अत्यन्त शीघ्रताकी ध्वनि है अथवा जहाँ भाव-तीव्रता है वहाँ यह क्रम उलट जाता है अर्थात् पहले क्रियाका प्रयोग होता है और बादमें कर्मका। जैसे—

मोर कहा सुनि करहु उपाई।
करहु कृपा हरिजस कहउँ।
करहु सेतु उतरै कटकु।
करहु सफल आपनि सेवकाई।
हँथवासहु बोरहु तरनि।
भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई।
उदय करहु जनि रबि रघुकुल गुर।
पहि ते जानहु मोर हित।
छाँड़हु बचन कि धीरज धरहू।
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।
तजहु तात यह रूपा।
तजहु आस निज निज गृह जाहू।
मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू।
भंजहु भव चापा।

उपर्युक्त उदाहरण भाव-उद्वेगके हैं जिसकी ओर कवि-वरने पहले क्रिया और बादमें कर्म लिखकर संकेत किया है। भाव-तीव्रताका एक और भेद है—विस्मय या आश्चर्य। जैसे—

देखहु मुनि अबिबेकु हमारा।
देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।
देखहु बनरन्ह केर ढिठाई।
देखहु भजन प्रताप।

आश्चर्यान्वित घटनासे भाव-उद्वेग उत्पन्न होता है। इस-

लिये ऐसे स्थलपर भी कविवरने पहले क्रिया और बादमें कर्मका प्रयोग किया है।

संक्षेपमें श्रीरामचरितमानसमें जहाँ सकर्मक क्रियाके प्रयोगमें कविवर तुलसीदासजीने पहले कर्मका उल्लेख किया है और उसके बाद क्रियाका। इसका अर्थ यह है कि वातावरण शान्त है या बात साधारण है या सर्वमान्य है या उस बातपर कोई बल नहीं दिया जा रहा है, न उसमें किसी प्रकारकी शीघ्रता है। इसके विपरीत जहाँ कविवर पहले क्रिया लिखते हैं और तत्पश्चात् कर्म वहाँ वे यह कहना चाहते हैं कि बात असाधारण है या वातावरण उद्विग्न है या भावमें तीव्रता है या बातपर विशेष बल दिया जा रहा है या कार्यमें शीघ्रता वाञ्छनीय है।

इस अन्तरके दर्शनार्थ एक छोटा-सा उदाहरण दिया जाता है। राजा भानुप्रतापकी कपटी मुनिसे घोर वनमें भेंट हुई है। मुनिने राजाको आश्रय दिया, राजासे मीठी-मीठी बातें कीं, जिससे मुनिपर राजाकी श्रद्धा हो गयी। तब राजाने पूछा—

नाथ नाम निज कहहु बखानी।

यह एक साधारण प्रश्न है। आप कौन हैं, यह एक मामूली सवाल है। आजकलकी भाषामें इसे 'रुटीन क्वेश्चन' नित्यक्रमका प्रश्न कहेंगे। कविवरकी दृष्टिमें जो इस प्रश्नका साधारण मूल्य है वह उन्होंने पहले कर्म अर्थात् 'नाम' और उसके बाद क्रिया अर्थात् 'बखानहु' लिखकर स्पष्ट कर दी। थोड़ी देर बाद कपटी मुनिने बड़े ढोंगकी बातें कीं जिसके कारण राजा भानुप्रतापका विश्वास कपटी मुनिपर बढ़ता गया। अन्तमें 'तापस बगध्यानी' बोला कि उसका नाम एकतनु था। जो भूमिका मुनिने बाँधी थी उसकी पृष्ठभूमिमें 'एकतनु' नाम सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गया। भाव-वेगसे उत्तेजित होकर उसने पूछा कि—

कहहु नाम कर अरथ बखानी।

पहला प्रश्न साधारण था; परंतु यह दूसरा प्रश्न उद्विग्न चित्तसे कियां गया है। इसमें आश्चर्य है, जिज्ञासाकी तीव्रता है, उत्तर पानेकी शीघ्रता है, उत्तेजना है जो पहले प्रश्नमें नहीं थी। इस भाव-वेगका संकेत कविवरने पहले क्रिया 'कहहु' और बादमें कर्म 'नाम कर अरथ' लिखकर किया है। प्रश्न दोनों नाम-सम्बन्धी हैं; परंतु एक साधारण प्रश्न है, दूसरा भावपूर्ण और यह भेद कविवरने क्रिया-कर्मके क्रममें भेद करके स्पष्ट कर दिया है।

एक और उदाहरण देखिये। दो रानियाँ अपने पतियोंसे बातें कर रही हैं। दोनों अनुपम सुन्दरी हैं, दोनों बड़ी पतिप्रिया हैं। कैकेयी राजा दशरथसे कहती हैं—

सत्य सराहि कहेहु बर देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥

रानी रोषपूर्ण हैं। उनकी बातमें कटु व्यंग भरा है। यह 'भाव-विह्वलता' 'कहेहु बर देना' में पहले क्रिया और बादमें कर्म लिखकर स्पष्ट कर दी। मंदोदरी रावणको समझा रही है। शान्तिपूर्ण समझा रही है। मीठी बोलीसे, मधुरतासे समझानेका प्रयास है।

कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जस लेहु।

यह शान्ति, यह भाव-प्राबल्यका अभाव कविवरने 'जस लेहु' कहकर स्पष्ट किया है जहाँ कर्म पहले और क्रिया बादमें है।

परंतु कभी-कभी इस प्रकारकी चौपाई भी मिल जाती है। जैसे—

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥

रावण-वध हो चुका है। प्रभु खरारि अनुजसमेत सकुशल हैं। यह संवाद महारानी श्रीसीताजीने सुना है। इसे सुनते ही वे विह्वल हो गयीं। वे—

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल।

—हो रही हैं। अब उनका बन्दी जीवन, विषम-वियोग-दग्ध-जीवन अन्त होनेवाला है। वे उत्तेजित हैं। सुख-सौन्दर्य-निधान प्रभुके दर्शनके लिये लालायित हैं। इससे अधिक शीघ्रतासूचक भावपूर्ण परिस्थिति क्या हो सकती है? परंतु कविवर कहते हैं—

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता।

यहाँ कविवर 'जतन' जो कर्म है उसका पहले उल्लेख करते हैं और क्रिया 'करहु' का इसके बाद। यह कर्म-क्रिया क्रमका वहाँ प्रयोग होता है जहाँ वातावरण साधारण हो। परंतु यहाँ तो वातावरण अत्यन्त भावपूर्ण है। कविवर चाहते तो इसको यों भी लिख सकते थे—

करहु जतन अब सोइ तुम्ह ताता।

—जिसमें पहले क्रिया और बादमें कर्मके क्रमसे शीघ्रताका बोध हो जाता। परंतु कविवरने ऐसा नहीं किया; क्योंकि तुलसीदासजी कवि ही नहीं थे वे कलाकार भी थे। इस रहस्यको समझनेके लिये एक छोटी-सी जीवन-झाँकीका वर्णन यहाँ आवश्यक है। एक बार एक माता अपने तीन बच्चोंके साथ चाय पी रही थीं। दो पुत्र थे—एक १४ वर्षका दूसरा ११ वर्षका और एक नववर्षीय पुत्री थी। माता जलेबी खा रही थीं। अकस्मात् जलेबीका एक छोटा टुकड़ा उनके तालूके पास पीछे जा चिपका, जिससे उनको साँस लेनेमें एकदम रुकावट आ गयी। उनके मुँहसे एक शब्द 'पानी' ही निकल पाया। उसे सुनते ही तीनों बच्चे पानीके लिये दौड़ पड़े। यह सच्ची घटना इस बातका दृष्टान्त है कि जिसको सत्य प्रेम होता है उसको आवश्यक बातके लिये बल देकर आदेश देना निरर्थक है। प्रेम यह सिखला देता है कि किस वस्तुकी कितनी आवश्यकता प्रेमपात्रको है। पवनकुमार बल-बुद्धि-निधान हैं। करुणा-निधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी और महारानी श्रीसीताजीके प्रिय सुत हैं। इनको सबल शब्दोंमें आदेश देना इनकी भक्तिका निरादर करना होता। माता श्रीजानकीजी क्या चाहती हैं, उसे वे कितनी तीव्रतासे चाहती हैं—ये बातें हनुमान्‌जीको बतलानेकी आवश्यकता नहीं। अपनी अगाध भक्तिके कारण वे स्वयं ही माताकी इच्छा शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करनेकी चिन्तामें रहते हैं। यदि पवनकुमारसे माता श्रीजानकीजी यह कहतीं कि तुम प्रभुके दर्शन मुझे शीघ्र करा दो तो इसका अर्थ यह होता कि या तो हनुमान्‌जीमें इतनी बुद्धि नहीं है कि वे माता श्रीजानकीजीकी प्रभु-मिलन-लालसाके वेगको समझ सकें, या उनमें यथेष्ट भक्तिभाव नहीं है जिससे पवनकुमार महारानी श्री-जानकीजीकी बलवती इच्छा-पूर्ति अविलम्ब करनेमें सफल हों। हनुमान्‌जीकी भक्ति और उनकी बुद्धिका निरादर न हो, इसलिये कविवरने महारानी श्रीजानकीजीके इस आदेशमें—

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥

—विशेष बल नहीं प्रदर्शित किया और इसे सामान्य आदेशके रूपमें ही रहने दिया। यह कविवरकी मनो-वैज्ञानिक सूझ और उनके शब्द-चमत्कारका उदाहरण है। श्रीरामचरितमानसको बहुत सजग रहकर अध्ययन करना आवश्यक है; क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, गोस्वामी तुलसीदासजी कविवर ही नहीं हैं, अनुपम कलाकार भी हैं।

(क्रमशः)

दोनों हाथ समेटी तेरी देन

दोनों हाथ समेटी तेरी देन।
दोनों हाथ समेटी तेरी देन॥
सुखकी, दुखकी,
अँधियारीकी, उजियारीकी,
दोनों हाथ समेटी तेरी देन।
दोनों हाथ समेटी तेरी देन॥
अँधियारीसे नींव पटाई।
तब सुखकी मंजिल बन पाई॥
दुखके द्वार-झरोखे रखकर।
उजियारी उनपर चमकाई॥
दोनों हाथ समेटी तेरी देन।
दोनों हाथ समेटी तेरी देन॥

—बालकृष्ण बलदुवा

पुरुषोत्तम मास

(लेखक—श्रीपरमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया)

परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १५। १९)

'हे भारत! जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वविद् सब प्रकारसे निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको ही भजता है।' इस श्रावणकी अमावास्या १८।७।६६ के बाद 'अधिक मास' श्रावण प्रारम्भ हो गया। अधिक मासको 'मलमास' और 'पुरुषोत्तम मास' भी कहते हैं। मलमासकी दृष्टिसे शुभ कर्म वर्जित होनेसे यह मास निन्दित है। परंतु—

पुरुषोत्तमेति मासस्य नामाप्यस्ति सहेतुकम्।
तस्य स्वामी कृपासिन्धुः पुरुषोत्तम उच्यते॥

भगवान् पुरुषोत्तम इसको अपना नाम देकर इसके स्वामी बन गये हैं। अतः इसकी महिमा बहुत बढ़ गयी है। इस पुरुषोत्तम मासमें साधन करनेसे मनुष्य पवित्र होकर भगवान्को प्राप्त हो सकता है। यह मास अन्य सब मासोंका अधिपति है। यह जगत्पूज्य और जगत्का वन्दनीय है और इसकी पूजा करनेपर यह सब लोगोंके दुःख, दारिद्र्य और पापका नाशक होता है।

येनाहमर्चितो भक्त्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तमे।
धनपुत्रसुखं भुक्त्वा पश्चाद् गोलोकवासभाक्॥

इस मासमें नियमपूर्वक रहकर पुरुषोत्तम भगवान्की विधिपूर्वक पूजा करनेसे भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और भक्तिपूर्वक इन भगवान्की पूजा करनेवाला यहाँ सर्व प्रकारके धन-पुत्रादिद्वारा सुख भोगकर मृत्युके बाद भगवान्के दिव्य गोलोकमें निवास करता है। अतः—

सभी घरोंमें, मन्दिरोंमें, तीर्थोंमें और पवित्र स्थलोंमें इस मासमें भगवान्की विशेषरूपसे महापूजा होनी चाहिये। इससे गौ, ब्राह्मण, साधु-संत, धर्म, देश और विश्वका मङ्गल होगा। साथ ही धर्मकी रक्षाके लिये व्रत-नियमोंका आचरण करते हुए दान, पुण्य, पूजन, कथा, कीर्तन और जागरण करना चाहिये।

मङ्गलं मङ्गलार्चनं सर्वमङ्गलमङ्गलम्।
परमानन्दराज्यं च सत्यमक्षरमव्ययम्॥

मङ्गलरूप, मङ्गल-पूजन-योग्य, मङ्गलोंके मङ्गल, परमानन्दके राजा, सत्य, अक्षर और अव्यय पुरुषोत्तम भगवान्का ध्यान करना चाहिये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका निरन्तर जप करना अत्यावश्यक है। घट-स्थापन और अखण्ड घीका दीपक भी रखना चाहिये। श्रीशालग्राम भगवान्की मूर्ति स्थापित करके उसका स्वयं या विद्वान् ब्राह्मणद्वारा विधिपूर्वक पूजन करना-कराना चाहिये। श्रीमद्भगवद्गीताके १५ वें (पुरुषोत्तमनामक) अध्यायका नित्य प्रेमपूर्वक अर्थसहित पाठ करना चाहिये। पुरुषोत्तम मासमें श्रीमद्भागवतकी कथाका पाठ करना-कराना महान् पुण्यदायक है। अधिक अवकाश प्राप्त हो तो सवा लाख तुलसीदलपर राम, ॐ या कृष्ण—इनमेंसे किसी एक नामको लिखकर चन्दनसे, भगवान् शालग्राम या भगवद्विग्रह-मूर्तिपर चढ़ानेका अनन्त पुण्य-माहात्म्य है।

पुरुषोत्तम-माहात्म्यकी कथा सुननी चाहिये और इस पुरुषोत्तम मासमें निम्नलिखित नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व उठकर शौच, दन्तधावन, स्नान, संध्या आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर—

गोवर्द्धनधरं वन्दे गोपालं गोपरूपिणम्।
गोकुलोत्सवमीशानं गोविन्दं गोपिकाप्रियम्॥

—इस मन्त्रद्वारा विधिपूर्वक षोडशोपचारसे नित्य पुरुषोत्तम भगवान्की पूजा करनी चाहिये। पूजन करते समय और कथा-श्रवण-पठन करते समय—नव-नील-नीरद श्यामघन, द्विभुज मुरलीधर पीतवस्त्रधारी पुरुषोत्तम भगवान्का नील-वसना परम द्युतिमयी भगवती श्रीराधाजीके सहित ध्यान करते रहना चाहिये। पुरुषोत्तम-माहात्म्यमें श्रीकौण्डिन्य ऋषि कहते हैं—

ध्यायेन्नवघनश्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्।
लसत्पीतपटं रम्यं सराधं पुरुषोत्तमम्॥

पुरुषोत्तमव्रतीको क्या भोजन करना और क्या न करना है; वर्ज्य-अवर्ज्य क्या है; इसके सम्बन्धमें श्रीवाल्मीकि ऋषिने कहा है—

इस पुरुषोत्तम मासमें एक समय हविष्यान्न भोजन करना चाहिये—जैसे गेहूँ, चावल, सफेद धान, जौ, मूँग, तिल, बथुआ, मटर, चौलाई, ककड़ी, केला, आँवला, दही, दूध, घी, आम, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, सेंधा नमक, इमली, पान-सुपारी, कटहल, शहतूत, सामक, मेथी इत्यादि-का सेवन करना चाहिये। केवल साँवा या केवल जौपर रहना अधिक हितकर है। माखन-मिश्री पथ्य है। गुड़ न लेकर ऊखका या ऊखके रसका सेवन करना चाहिये।

अपथ्य बताते हुए मांस, शहद, चावलका माँड़, उड़द, राई, मसूरदाल, बकरी-भैंस और भेड़का दूध त्याज्य कहा है। काशीफल (कोंहड़ा), मूली, प्याज, लहसुन, गाजर, बैंगन, नालिकका सेवन वर्जित है। तिलका तेल, दूषित अन्न, बासी अन्न भी ग्रहण न करे। अभक्ष्य और नशेकी चीजोंका सेवन नहीं करना चाहिये। फलाहारपर रहे और शक्तिसम्पन्न हो तो कृच्छ्र चान्द्रायण-व्रत उपवास करना अति उत्तम है।

इस मासमें मनुष्य ब्रह्मचर्यको धारण करता हुआ पृथ्वीपर शयन करे। थालीमें भोजन न करके पत्तल (पलास) में भोजन करे। रजस्वला स्त्री और धर्मभ्रष्ट संस्काररहित लोगोंसे दूर रहे। परस्त्रीका भूलकर भी कभी स्पर्श नहीं करे। इस मासमें वैष्णवकी सेवा करनी चाहिये। वैष्णव-भोजन करानेका बहुत पुण्य बतलाया गया है।

पुरुषोत्तम मास-व्रतीको कभी भी शिव, देवता, देवी, ब्राह्मण, वेद, गुरु, गौ, साधु-संन्यासी, स्त्री, धर्म और प्राज्ञ-गणोंकी भूलकर भी न तो निन्दा करनी चाहिये और न उनकी निन्दा श्रवण ही करनी चाहिये।

ताँबेके पात्रमें दूध, चमड़ेमें पानी, केवल अपने लिये पकाया हुआ अन्न—ये दूषित माने गये हैं। अतएव इनका परित्याग करना चाहिये। दिनमें सोना नहीं चाहिये। व्रतीमें शक्ति हो तो मासके अन्तमें उद्यापनके लिये एक मण्डपकी व्यवस्था करके वैष्णव-गुरुद्वारा भगवान्‌की षोडशोपचार पूजा करके चार-पाँच वेदविद् ब्राह्मणोंद्वारा चतुर्व्यूहका जाप कराना चाहिये। फिर दशांश हवन कराके नारियलका होम करना चाहिये।

गौओंको घास-दाना दान करे। ब्राह्मण-भोजन करावे। वैष्णवको यथाशक्ति सोना, चाँदी, गाय, वसु, घी, अन्न, वस्त्र, पात्र, छाता, जूता, गीता-भागवत आदि पुस्तकोंका दान करना चाहिये। काँसीके बर्तनमें ३० पुआ धर सम्पुट करके ब्राह्मण-वैष्णवको दान करे तो अक्षय पुण्यका भागी होता है।

इस मासकी भक्तिसे ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट होते हैं, पितृगण मोक्षको प्राप्त होते हैं तथा दिन-प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। निष्काम-भावसे सद्भक्ति की जाय तो जीव मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं।

ततश्चाध्यात्मविद्यायाः कुर्वीत श्रवणं सुधीः।
सर्वथा वृत्तिहीनोऽपि मुहूर्तं स्वस्थमानसः॥

आजीविका न हो तो भी बुद्धिमान् मनुष्यको दो घड़ी शान्त मनसे गुरुद्वारा आत्मविद्याका श्रवण करना और पुरुषोत्तम-तत्त्वको समझना चाहिये। गीताजीमें—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥
(१५। १७)

'क्षर और अक्षर—उन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सब अपरा-परा प्रकृति और पुरुष (जीव) सबका धारण-पोषण करता है वह अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा नामसे कहा गया है।' वही—

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
(गीता ९। १८)

वही पुरुषोत्तम सबकी एकमात्र गति—मुक्तिस्थान हैं, भरण-पोषण करनेवाले हैं, सबके प्रभु-स्वामी हैं। सबके साक्षी, आश्रय, शरण्य तथा सुहृद् हैं। वे सबकी उत्पत्ति, लय, आधार और निधान-स्वरूप भगवान् हैं। सब चराचरके बीज—कारण, अविनाशी, माता, धाता, पिता, पितामह हैं। वही पुरुषोत्तम नामसे कहे गये हैं।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥
(गीता १३। २२)

वास्तवमें वे ही पुरुषोत्तम देहमें स्थित हुए भी परे हैं; साक्षी, उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्त्ता-भोक्ता हैं। ब्रह्मादिकोंके भी स्वामी महान् ईश्वर हैं; वे ही सत्-चित्-आनन्दघन, विशुद्ध परमात्मा, पुरुषोत्तम भगवान् कहे गये हैं।

भगवान् पुरुषोत्तम कहते हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
(गीता १५। १८)

—क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्र 'प्रकृतिसे तो सर्वथा अतीत हूँ और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ।'

पुरुषोत्तम मासमें पुरुषोत्तमको जाननेकी श्रद्धा रखते हुए जो प्रयत्न-व्रत करना है, वास्तवमें वही सच्चा भजन, भाव, भक्ति और मुमुक्षुता है।

जो इस पुरुषोत्तमके अति गोपनीय रहस्यको तत्त्वसे जान गया वही मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो गया है।

प्रिय पाठकगण! पुरुषोत्तमतत्त्व समझिये और समझकर उसका भजन कीजिये। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्का नाम-जप, कीर्तन, सत्संग, यज्ञ, हवन, दान-पुण्य, दीन-सेवा, तीर्थयात्रा, आर्तसेवा, गो-रक्षा, कथा-श्रवण, पाठ-पूजा आदि नियमोंका आचरण-पालन करना भजन है।

मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। दुर्भाग्यकी बात है आज मानव इस महान् उद्देश्यको भूलकर अर्थ, अधिकार और विलासके पीछे पिशाचकी भाँति दौड़ने लगा है और देवदुर्लभ पदार्थको नष्ट कर खो रहा है। पाठकोंसे निवेदन है कि ऐसा न करके यथासाध्य इस पुरुषोत्तम मासमें कुछ नियम-पालन करनेकी कोशिश अवश्य करें।

बोलो पुरुषोत्तम भगवान्की जय! जय!! जय!!!

शुभ्रोपासना

(लेखक—स्वामीजी श्रीशारदानन्दजी)

[ॐ तत् सत् ॐ ऐं शारदायै नमः]

जो इस विश्वमें ओतप्रोत भावसे रहती हैं, अहैतुक प्रेम ही जिनके विश्वका छन्द है, उन अनन्तनामा, आनन्दमयी और लीलाचतुरा जिन्हें हम, आप और वे—सदा अनुभव करते हैं; परंतु अपनी सीमित बुद्धिके कारण समझ नहीं पाते, वही चैतन्य शक्ति 'शुभ्रा' हैं।

अनादि, असीम, नामातीत एवं निर्गुण ब्रह्म जब **'एकोऽहं बहु स्याम्'** इस संकल्पसे संक्षुब्ध हुए तब वे पुरुष और प्रकृति (या आद्याशक्ति) के रूपमें प्रतिभात हुए। ये पुरुष एवं प्रकृति अभिन्न एवं अङ्गाङ्गी न्यायसे सम्बन्धित हैं। जैसे सूर्य और उनका प्रकाश, आकाश एवं नीलापन एवं जल और उसकी तरलता है, उसी तरह पुरुष एवं आद्या शक्ति हैं, पुरुष तटस्थ या साक्षी हैं, उनके इच्छानुसार प्रकृति भिन्न-भिन्न लीलाएँ कर रही हैं।

पुरुष और प्रकृति त्रिगुणमें हमें इस तरह प्रतिफलित दृष्टिगोचर होते हैं—पुरुष सत्त्वगुणमें भगवान् विष्णु, रजस्में सृजनकर्ता ब्रह्मा एवं तमस्में कर्पूर गौर चन्द्रमौलीश्वर। इसी तरह आद्याशक्ति सत्त्वगुणमें शारदा, रजोगुणमें लक्ष्मीजी एवं तमोगुणमें कालीके रूपमें प्रतिफलित दिखायी देती हैं; किंतु वस्तुतः यह सारा दृश्य एवं अदृश्य जगत् बस एक सच्चिदानन्दघन परमानन्दमय ब्रह्मसे ही सब तरहसे परिपूर्ण है। वह समस्त रूपोंमें व्याप्त एक अनामय सत्ता है, जिसे आप महादेव, वासुदेव, श्रीकृष्ण या राम आदि कहते हैं। उन मङ्गलमय परमात्माकी सत्त्वरूपा अभिन्नाशक्ति ही 'शुभ्रा' हैं।

शारदा या शुभ्रा ज्ञान, बुद्धि एवं प्रज्ञाकी परिचालिका मानी गयी हैं। उनमें प्रेम, भक्ति, ज्ञान एवं कर्म साकार हो उठे हैं। शारदाका जो मनोरम रूप लोगोंमें प्रचलित है, वह श्वेताम्बरा, चतुर्भुजा, सदा मधुर हास्यमयी दिव्य गौरवर्णा तापसी-का रूप है, जो अनायास इसीसे मिलते-जुलते दुग्धफेन-धवल परेशकी याद दिलाता है।

दोनों भुजाओंसे वे वीणाका झङ्कार कर रही हैं, एकमें बड़ी व्यग्रतासे वीणा पुस्तक सँभाले हुए हैं और एक हाथमें स्फटिक-मालासे नाम-जप कर रही हैं। मानो हमें कह रही हैं कि कितना भी व्यस्त जीवन तुम्हारा रहे, प्रभुके मङ्गल-रसमय नामको एक क्षणभरके लिये न भूलना।

'ऐं' इनका बीजमन्त्र है। पूरा मन्त्र है—'ॐ तत् सत् ॐ ऐं शारदायै नमः' आप इसको जप सकते हैं। शारदा-देवी (शिवकी तरह) बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाती हैं। नाराज होना तो जानतीं ही नहीं, सचमुच ही शारदा अपार क्षमाशीला एवं स्नेहमयी हैं। किसी कविने इनके बारेमें कहा है—

चिन्तन-सी गहरी नीली आँखोंमें
स्नेहका-सा तार है समाया।
शुभ्र कुसुमोंसे मुस्कानमें
असीम प्यार है छाया।

आप इनपर सहज भरोसा कर सकते हैं। एक बात और आपको बता दूँ। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि नवजात बालक या बालिकाको अथवा उनके विद्यारम्भके दिन श्वेत चन्दन घिसकर उससे उनकी जिह्वापर 'ऐं' माता, पिता, ब्राह्मण या कोई भी श्रद्धायुक्त व्यक्ति शारदादेवीका स्मरण करके लिख दे तो वह बालक सत्यवादी, मधुरभाषी, निर्लोभ एवं विद्वान् होता है। आप भी चाहें तो शारदाको जिह्वाग्रपर प्रतिष्ठित कर सकते हैं, उनसे प्रार्थना करनेभरकी देर है—झूठे एवं कठोर शब्दोंका उच्चारण करना साध्यभर छोड़नेकी चेष्टा करें। प्रार्थना तो कभी छोड़ें ही नहीं तो निश्चय ही आपकी प्रार्थना सुन ली जायगी।

शारदा अपार कृपामयी हैं। ये शारदा (सार यानी मूलरस अर्थात् विद्या) देनेवाली हैं। ये शरत्कालीन पूर्णिमाकी शुभ्र कान्तिका-सा वर्ण रखनेवाली हैं। अतः इनका नाम शारदा है। ये सदा सरस रहती हैं इसलिये हम इन्हें सरस्वती कहते हैं; जितने भी कवि, ज्ञानी, कलाकार हुए हैं और होंगे, वे सभी इन 'शुभ्रा' के कृपा-कटाक्षसे धनी हैं। ये शुभ्रा सादा जीवन पसंद करती हैं, इसलिये ये ब्रह्माकी पुत्री तथा हरकी मानस-कन्या तपस्विनी हैं, इनकी एलायिता केशावली कृष्णा-गुरुके धूमके समान फैली हुई है, श्वेताम्बरा शारदा केवल श्वेत कुसुमोंके ही आभरणोंको पसंद करती हैं। इनका वाहन भी दुग्धफेन-सदृश शुभ्र मराल ही है। मराल (हंस) जल, स्थल और आकाश—तीनों स्थानोंमें ही स्वच्छन्दतासे विचरण कर सकता है। इससे वह यह सूचित करता है कि विद्याकी अबाध गति है। मराल जल तथा दूधके मिश्रणसे दूधको अलग कर पी लेता है, इससे उसकी सारग्राहिता एवं विचारशीलता व्यक्त होती है। विचारशील पुरुष शास्त्रोंके अध्ययनसे उसका सार ही ग्रहण करते हैं।

इनका नाम 'भारती' क्यों पड़ा ? इसके सम्बन्धमें एक सुन्दर कहानी है। एक बार आर्यावर्तमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। प्राणियोंके घोर कष्ट देखे नहीं जाते थे। यह देखकर 'भरत' नामक मुनिने द्रवित होकर हिमालयकी घाटीमें तपस्या करके 'शुभ्रा' को प्रसन्न करना चाहा। परम कृपामयी सरस्वती शीघ्र ही प्रकट हो गयीं और वर माँगनेके लिये कहा। ऋषिने उन्हें लोगोंके दुःखकी करुण-कथा सुनायी। शारदाका हृदय विगलित हो उठा, उन्हें इतना भी धीरज न रहा कि इन्द्रको वर्षा करनेकी आज्ञा दे देतीं, वे स्वयं करुणासे पिघलकर नदी बन गयीं, भरतजी शङ्ख बजाते हुए उन्हें लेकर दुर्भिक्ष-पीड़ित क्षेत्रोंसे गुजरे। चारों ओर हरियाली छा गयी। प्राणियोंका दैन्य-दुःख तथा संताप ऐसे मिट गया मानो कभी था ही नहीं और सब परम सुखी, प्राज्ञ तथा धर्मात्मा बन गये। शास्त्रोंसे हम जानते हैं कि ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, वेद और वेदाङ्ग सरस्वतीके पुनीत तटपर ही लिपिबद्ध किये गये थे। आज भी प्रयागके त्रिवेणी-संगममें, जहाँ तीनों बहिनें—गङ्गा, यमुना और सरस्वती मिलती हैं, स्नान करनेसे एक अपूर्व दिव्यताका अनुभव होता है। आज भले ही स्थूल रूपमें सरस्वती नदी नहीं दीखती, परंतु वह जन-मानसके हृदयमें नित्य प्रवहमान है।

शारदा विद्या देती हैं। कुछ लोग भ्रान्तिसे ज्ञानकी निन्दा करते हैं; उन्हें अज्ञानमें भोलापन, श्रद्धा एवं उदारता झलकती है। किंतु यह निरा भ्रम है। यह बात सही है कि एक बार दुष्टकी बुराई करनेकी क्षमता विद्यासे कुछ हदतक बढ़ जाती है। जो दुष्ट इसलिये भोला-भाला नजर आता था कि उसमें ठगनेकी बुद्धि नहीं थी, थोड़ी-सी विद्या निश्चय ही उसका असली स्वरूप प्रकाशमें ले आती है, परंतु जब महान् दुर्वृत्त या अविश्वासी भी सत्यको जाननेकी गहरी जिज्ञासा लेकर विद्याके असीम उपवनमें आता है, तब वह भी कृतकृत्य हो जाता है। उसका अविश्वास गहरे विश्वासके रूपमें बदल जाता है। जीवनकी कायापलट हो जाती है। श्रीकाउन्ट लियो टॉलस्टाय, जो सचमुच लियो (सिंह) नामको सार्थक करते थे, ये असीम बलशाली, कामी, विपुल वैभवसम्पन्न थे और 'धर्म' के प्रति इनकी गहरी अनास्था थी। टॉलस्टायके अपने ही शब्दोंमें—'अब धर्मका युग लद चुका है, विज्ञानके सिवा किसी चीजपर विश्वास रखना मूर्खता है'—किंतु संसार जानता है कि जिस धर्मकी टॉलस्टाय निन्दा करते थे, उसीकी खोजमें वे सब कुछ भूलकर दिवाने बन गये, फकीर बन गये और प्रेम तथा अहिंसाके रूपमें उसे पा लिया। मेरे एक परिचित हैं जो स्वभावसे श्रीकृष्ण-द्वेषी हैं, पर राम और भगवान् शंकरके

भक्त हैं। उन्होंने गीताके बारेमें सुना और प्रतिज्ञा की कि 'जिस ग्रन्थको सुनकर एक भाईने (अर्जुन) एक भाईकी (कर्ण) कुरुक्षेत्रके युद्धमें अधर्मपूर्वक हत्या की; उस ग्रन्थको मैं मिटा डालूँगा। मैं युक्तिपूर्वक ऐसी समालोचनाएँ लिखूँगा कि फिर कोई भी गीता नहीं पढ़ेगा।' गुस्सा, खीझ एवं घृणा—तीनोंसे भरकर उन्होंने गीताको उठा लिया; क्योंकि बिना पढ़े और समझे वे समालोचना कैसे लिख सकते ? उनका क्रोध एवं खीझ प्रथम अध्यायतक जारी रहा, द्वितीय अध्यायसे घटने लगा एवं चतुर्थ-पञ्चम अध्यायमें उनके चेहरेपर आश्चर्य छा गया। दशम तथा एकादश अध्यायतक उनकी आँखोंमें श्रद्धा आ गयी। उनकी आँखें गहरी चिन्तामें खो गयी थीं। वे तन-मनकी सुध खो बैठे थे। अन्तमें भाई साहबने यह निष्कर्ष निकाला कि गीतामें बहुत-सी बातें सही हैं, पर बहुत-सी बातें गलत भी हैं। अतः वे फिर गीताका दृढ़ अध्ययन कर उन गलत विचारोंका खण्डन करेंगे। ऐसा निश्चय किया। यों उन्होंने सैकड़ों बार गीताको पढ़ डाला, पहलेकी ही भाँति लवलीन होकर। किसी एक भी श्लोकका उन्होंने खण्डन नहीं किया। गीताके लिये ही वे श्रीकृष्णके कुछ अंशतक प्रशंसक बन गये। गीताको कण्ठस्थ करनेका प्रयास वे कर चुके हैं। अब वे गीताके ऐसे कायल हैं कि प्रायः गीतासे उद्धरण देते हैं।

विद्या ही बताती है कि सांसारिक भोगकी वस्तुएँ नश्वर तथा तुच्छ हैं, विद्या हमारे लिये नेत्रोंके समान हैं। बड़े-बड़े विद्वान् वीतरागी तथा निष्काम हुए हैं। मैत्रेयीने विद्याके बलपर ही कहा था—

'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।'

प्रकाण्ड पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महामना मालवीय, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र, आचार्य जगदीश, श्रीअश्विनीकुमार दत्त, सर आशुतोष आदि इस बातके प्रमाण हैं कि आज भी वास्तविक शिक्षित व्यक्ति परोपकारको जीवनका धर्म बनाते हैं। अतः विद्या मनुष्यको स्वार्थी बनाती है यह मानना महान् भ्रम है। अवश्य ही विद्याको केवल पढ़ना ही नहीं, जीवनमें उतारना चाहिये।

विद्यादान सब दानोंसे बढ़कर है; क्योंकि विद्या कभी घटती नहीं है, वरं दान करनेपर बढ़ती है। कोई इसे छीन नहीं सकता। विद्या देनेवाले गुरुकी महामहिमा है। इसलिये शास्त्रोंमें इसकी महिमा गायी जाती है। कहा गया है—

मातेव रक्षति पितेव हिते. नियुङ्क्ते
कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥

विदेशमें, दुःखमें तथा मृत्युके बाद भी विद्या मनुष्यकी सेवा करना भूलती नहीं।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

विद्या मनुष्यको सर्वपूज्य, यहाँतक कि शत्रुओंद्वारा भी पूज्य बना देती है। आर्किमिडिजने अपने राज्यकी रक्षाके लिये रोमनोंके सैकड़ों जहाज सूर्यकी किरणोंको केन्द्रित करके जला डाले, फिर भी रोमन सेनापतिका दृढ़ आदेश था कि वाणीके उस वरपुत्रपर कोई हाथ न उठावे। महापण्डित रावण जब मृत्युशय्यापर पड़े थे तो उनके विजेता भगवान् राम लक्ष्मणके साथ नम्रतापूर्वक उनके पास आ खड़े हुए तथा उन्होंने रावणसे नीतिकी सीख माँगी। उस बुझती हुई प्रखर प्रतिभा-ज्योतिने सारमें यही कहा—

शुभस्य शीघ्रम् अशुभस्य कालहरणम्।

ठीक इसी तरह भीष्मकी शर-शय्यापर विजयी युधिष्ठिरको हम जिज्ञासु-रूपमें पाते हैं।

यह द्वितीय विश्वयुद्धकी बात है। जर्मन लोग प्राणपणसे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने एक अंग्रेज अफसरको घेर लिया। उसे अकेला तथा निहत्था देखकर भी एक साथ उसपर बीस राइफलें सध गयीं, मौतकी घबराहटमें उसने यही कहा—I am a doctor! (मैं एक डाक्टर हूँ।) बीसों राइफलें झुक गयीं और उसे वे आदरपूर्वक वहाँ ले गये, जहाँ उनके सर्जेंट मौतकी घड़ियाँ गिन रहे थे। डाक्टरने ऑपरेशनद्वारा सर्जेंटकी जान बचायी और उन्हें युद्धके उपरान्त ससम्मान अपने देश लौटने दिया गया। वस्तुतः विद्यामें ऐसी सम्मोहनी है—

गरल सुधा रिपु करइ मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

आजका सारा विज्ञान, सारी सभ्यता शुभ्राकी अनवरत उपासनाका ही परिणाम है, फिर भी विद्या हमें नम्र ही बनाती है।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मस्ततः सुखम् ॥

सुकरात-से ज्ञानी यही कहते थे कि 'मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता।' न्यूटन-से महान् गणितज्ञ और भौतिक शास्त्रके पण्डितका कथन है—'मैं अगर औरोंसे कुछ देख सका हूँ तो 'विशालकाय कंधोंपर' चढ़कर ही।'

आज सर्वत्र 'रमा'की ही अन्ध उपासना दिखायी देती है, 'शुभ्रा'की लोग यदि करते हैं भी तो बस 'रमा'के कृपा-कटाक्षकी प्राप्तिके लिये ही। परंतु वे सोच लें—चञ्चला रमाको वे बाँध न सके तो ! उनकी अन्ध-आराधनासे वे अन्ध उलूक अवश्य बन जायँगे।

मेरा आपसे पुनः यही निवेदन है कि आप 'शुभ्रा'को वाणी और हृदयमें स्थान दें, जीवनमें उनके निर्देशोंको उतारें। चारों ओर अँधेरा छाया है, प्रकाश फैलाइये। शास्त्रोंमें बिना भटके उनके मूल उपदेशोंको जीवनमें उतारिये। एक उदाहरण लीजिये—

शास्त्रोंमें कहा गया है, 'यज्ञ करना चाहिये।' आपके यज्ञ करनेसे हो सकता है कि आपका भूखा पड़ोसी और भी उदास हो। यज्ञके अदृष्ट फलोंको वह नहीं जानता-मानता हो, आप साध्यानुसार उसकी सहायता करें, यज्ञ (होम) करना छोड़कर जप-यज्ञ करें। इससे किसीको दुःख नहीं होगा और निश्चय ही एक प्रभुनाम-जप अनन्त अश्वमेध यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है—

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥

आप अपने जीवनका ध्येय परोपकार, ज्ञानोपार्जन एवं ईश्वराराधन बनाइये, सादा जीवन बिताइये एवं सबमें प्रेममय प्रभुको देखिये। यही 'शुभ्रा'की सच्ची उपासना है। शुभ्राकी सेवासे आप प्रभुतक सहज ही पहुँच सकते हैं। जहाँ 'शुभ्रा' आपको न ले जा सके, वहाँ आपको और कोई भी नहीं पहुँचा सकेगा। 'शुभ्रा' आपको उस अव्यक्त, अनामयके पास आखिरी मंजिलतक पहुँचा देगी। उसके बाद तो प्रभु-कृपा ही है। किंतु आप हताश न हों, विद्या एक धन है, शक्ति है एवं धन और शक्तिके रूपमें यह सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी धर्म ही है, मुक्तिको देनेवाली है, 'सा विद्या या विमुक्तये' वही 'शुभ्रा' श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और प्रेमके रूपमें आपको इष्टतक पहुँचाती है। वह ज्ञानके प्रकाशरूपमें खाइयों-गड्ढों और कँटीली झाड़ियोंसे बचाती है। शुभ्रा ही बताती है कि घृणाको प्रेमसे, लोभको त्यागसे और क्रोधको क्षमासे कैसे जीता जा सकता है ? बुराईको अच्छाईसे जीतनेका प्रयास पापसे घृणा करना है, परंतु पापियोंपर करुणा करना है। यह 'शुभ्रा' का ही सिद्धान्त है।

एक बार महर्षि दुर्वासा अमरावतीमें जा रहे थे। शारदासे उनकी भेंट हो गयी। शुभ्राने ऋषिको विनयसहित नमस्कार किया; कुशल-क्षेम पूछा। ऋषि किसी कारणवश क्षुब्ध थे, सदा-हास्यमयी शुभ्राको देखकर उनको क्रोध आ गया। ऋषिने शाप दिया कि 'तुम धरतीपर मानवी बनकर जन्म लोगी।' किंतु शुभ्राके चेहरेपर एक ग्लान रेखातक न झलकी। उन्होंने महामुनिकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ाते हुए कहा—'आपका शाप शिरोधार्य है। महामुने ! आपका कल्याण हो। आपका यश नित्य वृद्धिको प्राप्त हो, सारे वेद-वेदाङ्ग एवं स्मृतियाँ आपके मानसमें विमल होकर विराजें। मुझे अबोध पुत्रीके समान जानकर मेरी त्रुटिको चित्तमें न धरें। आपने नीतिके लिये शाप देकर मेरा बड़ा ही कल्याण किया।'

शापके बदले वरदान देनेवाली इस अपूर्व कृपामयीको हम अपने जीवनकी पथ-प्रदर्शिका बनावें। अहंकार, लोभ, मोह तथा दुःखके पास रहनेपर भी वे आपको छू न सकेंगे।

पुनः मैं अपनी बहनोंसे और माताओंसे अनुरोध करूँगा कि आप हर एक शुभ्राकी प्रतिमा हैं। आप अपनी उन करोड़ों बहनोंको प्रकाशमें लाइये जो अन्धकारमें डूबी हैं, प्रत्येक मानवके—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जीवनका आदर्श सीमित नहीं है। नाल्पे सुखमस्ति। प्रत्येकका अपने परिवारके प्रति ही नहीं, विश्वके प्रति कर्त्तव्य है। पारिवारिक मूल्योंको पूरा करते हुए उन्हें आगे बढ़ना है। निश्चय ही इनमें कठिनाइयाँ आयेंगी, परंतु जो हलाहल पीकर होठोंसे सुधा बरसायें, वे ही महादेव हैं और जो दुखियोंके हाहाकारपर अपनेको पिघलाकर उनके आँसुओंको प्रसन्नतामें बदल दें, वे ही वरेण्या शुभ्रा हैं।

शिक्षकका धर्म और उसके आदर्श

(लेखक—अध्यापक श्रीमानिकलालजी 'दोषी')

समाजमें सद्गुणी और दुर्गुणी—दोनों प्रकारके व्यक्ति पाये जाते हैं, जिनका जन्मदाता वस्तुतः शिक्षक ही होता है। यथार्थमें शिक्षक ही समाजका निर्माता होता है। चूँकि बालक शालामें कोमल एवं स्वच्छ हृदय लेकर आता है। उसके मनपर शिक्षक चाहे जिस रूपसे अपना प्रभाव अङ्कित कर सकता है। इसलिये शिक्षकका यह धर्म हो जाता है कि वह स्वयं सद्गुणोंका संचय और आचरण करके बालकमें सद्गुणोंका ही अङ्कुर उत्पन्न करे; क्योंकि आजका बालक ही भावी नागरिक होगा। इतिहासका वास्तविक निर्माता शिक्षक ही होता है। समाज तथा देशकी बहिर्मुखी उन्नति करना ही शिक्षकका उद्देश्य होना चाहिये; क्योंकि शिक्षकद्वारा व्यक्त किये गये विचार ही छात्रोंकी अमर धरोहर होते हैं।

जिस देशके शिक्षक अपने कार्योंको अपना धर्म मानकर करते हैं, उनसे ही राष्ट्र-हितकी सम्भावना हो सकती है। समाज एवं राष्ट्रकी अवनतिमें शिक्षक ही 'दोषी' है। शिक्षकके आदर्श निम्न प्रकार हैं (जिनका शिक्षकमें होना अनिवार्य है)—

(१) **चरित्र**—शिक्षकका चरित्र उच्चकोटिका होना चाहिये, उसका आचरण एवं व्यवहार आदर्श रूप होना चाहिये। चरित्रवान् शिक्षकोंके विचारोंका प्रभाव छात्रोंपर अमिट होता है।

(२) **कार्यमें रुचि**—अध्यापन एक कला है। उसका नित्य-नव विकास होता है। अतः शिक्षकको अपने कार्यमें लगन एवं उत्साहसे विकास करते रहना चाहिये।

(३) **मनोविज्ञानका ज्ञान**—मनोविज्ञान वह साधन है, जिसकी सहायतासे शिक्षक अपने ज्ञानको बालकोंमें सरलतापूर्वक प्रविष्ट कर सकता है।

(४) **समयकी नियमितता**—बालकोंमें अनुकरणकी प्रवृत्ति विशेष होती है। अतः आदर्श शिक्षकको अपने सब कार्य बिल्कुल ठीक समयपर ही करने चाहिये।

(५) **धैर्य**—बालकोंमें जिज्ञासा-प्रवृत्ति विशेष होती है। अतः छात्रोंद्वारा प्रश्न करनेपर उन्हें धैर्यपूर्वक उत्तर देना चाहिये, धैर्यपूर्वक ही उनसे उत्तर निकलवाना चाहिये। क्रोधित तो होना ही नहीं चाहिये। ऊबना भी नहीं चाहिये।

(६) **ज्ञान-पिपासा**—आदर्श एवं सफल शिक्षकको नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। अपने विषयका विशेष तथा अन्यान्य विषयोंका भी साधारण ज्ञान अवश्य होना चाहिये।

(७) **गुणदर्शन**—शिक्षककी बातचीत और व्यवहारमें दूसरोंके गुण देखकर उनका आदर करनेकी प्रवृत्ति होनी चाहिये, न कि दोष देखकर निन्दा करनेकी। गुणदर्शनका आदर्श बालक ग्रहण कर लेंगे तो वे अपने जीवनमें सर्वत्र गुण ही ग्रहण करनेमें अभ्यस्त हो जायँगे, जो जीवनका एक परम लाभ है।

(८) **न्यायप्रियता**—शिक्षकको बालकोंके नित्यप्रति होनेवाले विवादोंका पक्षपातरहित निर्णय देना चाहिये, जिससे अनुशासन बना रहे। छात्रोंमें समान व्यवहार रखना चाहिये।

(९) **सहयोगकी भावना**—निर्धन छात्रोंको अन्य छात्रोंसे पढ़नेकी सामग्रीका उचित सहयोग दिलवाना एवं यथासाध्य स्वयं देना चाहिये।

(१०) **बालकोंके स्नेह और सम्मान**—शिक्षकको छात्रोंके प्रति सच्चे हृदयसे स्नेहशील होना चाहिये और उनका यथोचित सम्मान भी करना चाहिये। उच्च कक्षाओंके छात्रोंसे मित्रका-सा व्यवहार होना चाहिये। इस व्यवहारसे शालाका अनुशासन भंग नहीं होने पाता।

(११) **वेश-भूषा एवं साज-सज्जा**—'सादा जीवन, उच्च विचार' इस सिद्धान्तपर शिक्षकका जीवन आधारित होना चाहिये, कपड़े एवं उनके पहननेका ढंग सादा-सीधा तथा साफ-सुथरा होना चाहिये।

(१२) **विनोदप्रिय**—अध्यापन-कार्यमें छात्रोंकी थकानको दूर करनेके लिये शिक्षकको समय-समयपर शिष्ट और उपदेशपूर्ण हास्य-विनोद भी करना चाहिये, प्रसन्न-चित्त रहना चाहिये।

(१३) **पाठकी तैयारी**—प्रत्येक शिक्षकको कक्षामें जानेसे पूर्व नवीन पाठकी तैयारी कर लेनी चाहिये। इससे कक्षामें अध्यापन सरलतासे सम्पन्न होता है।

(१४) **धर्म-निरपेक्षिता**—हर धर्मसे सम्बन्धित छात्र कक्षामें पढ़ने आते हैं, अध्यापनके समय शिक्षकका झुकाव किसी धर्म-विशेषकी ओर न होना चाहिये।

(१५) **राजनीतिसे दूर**—देशमें चल रही दलगत राजनीतिसे दूर रहना चाहिये, दलोंके विचारों एवं नीतियोंसे परिचित रहे, पर सभी दलोंसे तटस्थ भाव रखे।

(१६) **देश-भक्त**—आदर्श शिक्षकको अपने देशके प्रति भक्तिपूर्ण भावनाएँ रखनी चाहिये। उसे छात्रोंमें राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करना चाहिये।

(१७) **नेतृत्वकी क्षमता**—शिक्षक अपनी कक्षाका नेता होता है। उसे अपने छात्रोंका ठीक-ठीक नेतृत्व करना चाहिये। छात्रोंको अनुशासन-बद्ध करनेकी क्षमता होनी चाहिये।

(१८) **चित्रकार शिक्षक**—चित्रकलाद्वारा छात्रोंके मानस-पटलपर समस्त गुण सरलतासे अङ्कित किये जा सकते हैं। अतः शिक्षक चित्रकार हो तो बहुत उत्तम है।

(१९) **सुधाकार शिक्षक**—सुधाकार शिक्षक ही देश और जातिके लिये आत्मोत्सर्ग करनेवाले नागरिक तैयार करता है।

(२०) **कलाकार शिक्षक**—कलाद्वारा शिक्षक बालकोंमें भाव-सौन्दर्य एवं कल्पनाकी सृष्टि कर सकता है। शिक्षा ही एक कला है। कलाके प्रति उसमें प्रेम होना चाहिये जिससे छात्रोंको शिक्षा दे सके। सभी शिक्षकोंमें उपर्युक्त आदर्श होना आवश्यक है।

विद्यार्थी-धर्म ही जीवनकी आधार-शिला है

(लेखक—श्रीसुदामाप्रसादजी त्रिपाठी 'दीन', शास्त्री एम्० डी० एच्०)

मानव-जीवनको सुखमय व्यतीत करनेके लिये हमारे पूर्वजोंने जीवनके चार विभाग किये, जिनमें सबसे पहला जीवन, जिसे विद्यार्थी-जीवन कहते हैं, समग्र जीवनकी नींव होता है। वह जिस परिस्थितिमें, जिन रूपोंमें पलता है उसीमें आगेका पूर्ण जीवन भी रमण करता है। लाख प्रयत्न करनेपर भी विद्यार्थी-जीवनकी छाप सहजमें नहीं दूर होती। अतः विद्यार्थीके लिये यह अत्यन्त उपयोगी होनेके साथ-साथ आवश्यक है कि वह अपने धर्मको भलीभाँति पहचान ले। धर्मका लक्षण लिखते हुए श्रीमनुजीने कहा है कि—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥
(२। १२)

वेद, स्मृति, सत्-आचार और मनकी प्रसन्नता (किसी भी विषयमें जहाँ एकसे अधिक पक्ष बताये गये हों वहाँ जिस पक्षके ग्रहण करनेमें अपना मन प्रसन्न हो)—यही चार धर्मके साक्षात् लक्षण हैं।

धर्मका वास्तविक अर्थ कर्त्तव्य होता है। धर्म-परिवर्तन वास्तवमें अर्थ-हीन शब्द है। सम्पूर्ण पृथ्वीके जलमयी हो जानेपर कहीं भी जाइये उस समय एक जलराशिसे दूसरी जलराशिमें निमग्न होना ही पड़ेगा। इसीलिये तो कहा है कि **'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'** धर्म-परिवर्तनके समर्थक इसके आश्रयकी थाह कभी नहीं पा सकते। धर्म एक रस है जो कर्त्तव्यका आलोक प्रदान करता है और अन्तमें कर्त्तव्यस्वरूप बनकर धर्माधिकारीके जीवनको सौभाग्यके साँचेमें ढालता है।

विद्यार्थी-जीवनके प्रभातमें धर्म सूर्यकी तरह चमकता हुआ नाना प्रकारकी तीक्ष्ण रश्मियोंवाली संयमशीलताको लेकर उसे प्रकाशमान करने तथा सोये हुए जीवनके सपनेको सँजोनेके लिये आता है। इसलिये विद्यार्थीको अपने धर्मकी सिद्धिके लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। इसके लिये पर्याप्त श्रद्धा और विश्वासकी महती आवश्यकता होती है। बिना श्रद्धासे धर्मकी सिद्धि सम्भव नहीं है। जैसा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिसवासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥

इसी प्रकार गोस्वामीजीने मर्यादापुरुषोत्तमका आदर्श दिखाकर विद्यार्थीका प्राथमिक धर्म दर्शाया है—

प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

और मनुजीने विद्यार्थीके लिये आचार्य-हितमें तत्परता तथा उनके सामने उठने-बैठने और बोलने आदिकी विधि बताते हुए कहा है कि—

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च॥

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च।
नियम्य प्राञ्जलिः तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥
(२।१९१-१९२)

आचार्यके कहनेपर अथवा न कहनेपर भी विद्यार्थी अपने अध्ययनमें और आचार्यके हितमें सदैव प्रयत्नशील रहे। शरीर, वचन, बुद्धि, इन्द्रिय और मनको अपने वशमें करके दोनों हाथ जोड़कर गुरुके मुखकी ओर देखता हुआ स्थित हो (बैठे नहीं)।

जब गुरुजी विद्यार्थीको आज्ञा दें उस समय किस प्रकारसे आज्ञापालन किया जाय, यह मनुस्मृति बतलाती है—

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः॥
(२।१९५)

विद्यार्थीको स्वयं सोये हुए, आसनपर बैठे हुए, खाते हुए और मुँह फेरे हुए गुरुकी आज्ञाका स्वीकार या उनसे सम्भाषण नहीं करना चाहिये।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।

—मानता हुआ विद्यार्थीका यह भी धर्म है कि यदि संत-शास्त्रोंके वचन कहीं समझमें न आयें या कहींपर उन वचनोंमें अपनी बुद्धिमें संदेह हो जाय तो महापुरुषोंके आचरणोंको लक्ष्य मानकर उनके अनुसार चलना उपयोगी होता है। जैसा कि महाभारतमें यक्षके प्रश्नोंका समुचित उत्तर देते हुए महाराज युधिष्ठिरने बताया है—

तर्कोऽप्रतिष्ठः स्मृतयो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

तर्ककी कोई प्रतिष्ठा नहीं, श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न मत बताती हैं, एक भी ऐसा ऋषि नहीं जिसकी वाणी प्रमाणित हो और धर्मका तत्त्व गुहामें छिपा है अतः जिस मार्गसे महापुरुष गये हैं वही सन्मार्ग है, उसीपर चलना श्रेयस्कर है।

विद्यार्थीको मौखिक उपदेशकी अपेक्षा आदर्श आचारका संस्कार इतनी दृढ़तासे ग्रहण करना चाहिये जिससे कि उनकी छाप आजीवन उसे आत्मबल प्रदान करती रहे। 'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्'के सिद्धान्तानुसार वर्तमान कालका मुद्रित संस्कार विद्यार्थीके भावी जीवनमें प्रेरणा प्रदान करता ही है। इसीलिये विद्यार्थीका विषय चाहे गणित हो या भूगोल, इतिहास हो या अर्थशास्त्र, उसे अपने धर्मकी प्रवृत्तिको सदैव जाग्रत् रखना चाहिये। धर्मका तात्पर्य पूजा-पाठसे नहीं है। धर्म उन कार्मोंकी समष्टिका नाम है जो सर्व-मङ्गलकारी है। अपना तथा समस्त विश्वका कल्याण करनेवाला है। यह ध्यान देनेकी बात है कि विद्यार्थीका कल्याण समाजके कल्याणसे पृथक् नहीं हो सकता। विद्यार्थीके बहुत-से ऐसे गुण हैं जिनका विकास समाजमें रहकर ही हो सकता है। इसलिये समाजको ध्यानमें रखकर ही आगे बढ़ना विद्यार्थी-धर्मका आदर्श होना चाहिये। विद्यार्थीको पशु, पक्षी और देव आदिको भी अपने समाजका अङ्ग मानना चाहिये। इन सभीका ऋण विद्यार्थीपर रहता है इसलिये उसे इस ढंगसे अपना धर्म निभाना है जिससे पूर्वजोंने जो प्रकाश छोड़ रक्खा है वह पीछे आनेवालोंतक पहुँच जाय। इसी विस्तृत कर्त्तव्य-राशिको धर्मकी संज्ञा दी जाती है।

कहनेका सारांश यह है कि ज्ञान-विज्ञान और कला-शिल्पकी जानकारी तथा प्रयोगनिपुणताके साथ अपने अन्तःकरणका संशोधन, शीलका उद्बोधन, त्याग-सदाचार और सेवामें नित्य-प्रवृत्ति, आचरणका उन्नयन, भगवान्में श्रद्धा-विश्वास और संकुचित 'स्व' के बन्धनसे मुक्ति—ये विद्यार्थीके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धर्म हैं। इनके द्वारा ही मानवताका विकास और देवकी ओर गतिशीलता हो सकती है तथा इन्हीं धर्मोंका उपयोग अपने जीवनमें करता हुआ विद्यार्थी समस्त ऋणोंसे मुक्त होकर परम श्रेयको प्राप्त कर सकता है।*

---

* विद्यार्थीमें निम्नलिखित सद्गुणों तथा सदाचारका विकास एवं विस्तार परमावश्यक है—

(१) पूर्ण मनोयोगके साथ विद्याध्ययन करना, (२) माता-पिता-गुरु आदिके प्रति आदर-बुद्धि और नित्य उनके चरणोंमें प्रणाम करना, (३) फैशन—शौकीनीसे बचना, (४) गंदे साहित्य, चित्र, कुसंगतिसे बचे रहना, (५) नित्य भगवान्का स्मरण करना, (६) अपना काम अपने हाथसे करना—परावलम्बी न होना, (७) व्यर्थ खर्चकी तथा अधिक खर्चकी आदत न डालना, (८) आत्मविश्वास तथा सफलतामें विश्वास रखना, (९) किसी भी जीवको दुःख न पहुँचाना—दीन-दुखियोंके प्रति विशेष स्नेह रखना, उनकी यथासाध्य सेवा करना, (१०) धर्मके अनुसार आचरण करना, (११) व्यवस्था मानना और (१२) मधुर भाषण करना तथा सदा सबका सम्मान एवं हित करना।

दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ १०५९ से आगे]

शेषाचलके दक्षिण-पूर्वमें बीस मीलकी दूरीपर सुधर्म नामक चन्द्रवंशी राजा तोंडराज्यका पालन करते थे। उनके आकाशराजा और तोंडमान नामक दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र आकाशराजाको राज्यभार सौंपकर राजा सुधर्म तपस्या करने चले गये।

आकाशराजाके शासनमें प्रजा सुख-शान्तिसे रहती थी। वह राजभक्त, सत्यमार्गी एवं परोपकारी थी। राजा भी अपनी प्रजाको निजी संतानकी तरह देखता था। प्रजाको सुखी रखनेमें कोई कसर नहीं रखता था। परंतु राजाके मनमें एक चिन्ता सदा सताती रही और वह थी संतान-हीनताकी। इस तरह बहुत-सा काल बीत गया।

एक दिन आकाशराजाने अपने गुरु शुक महर्षिको बुलाकर अपना यह दुःख बताया तो उन्होंने कहा—'पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करनेसे अवश्य संतान प्राप्त हो सकती है।' बस, आकाशराजाने वह यज्ञ करनेका निश्चय किया और एक शुभ दिनमें यज्ञकुण्ड बनानेके लिये सोनेके हलसे जमीन जोतने लगे। तब यह हल लकड़ीके एक संदूकको जा लगा। उसे बाहर निकालकर खोलनेपर उसके भीतर स्वर्णमय सहस्र कमलके बीच देदीप्यमान कन्या दीख पड़ी। ज्यों ही राजा उस कन्याको हाथोंमें उठा लेनेको उद्यत हुए, त्यों ही यह आकाशवाणी सुनायी दी—'हे राजा! पूर्वजन्मके पुण्यफलसे अब तुम्हें यह कन्या प्राप्त हुई है। इसे अपनी पुत्री मानकर इसका पालन-पोषण करो। तुम्हारा जन्म सफल हुआ। उस कन्याके कारण तुम और तुम्हारे कई पीढ़ियोंके लोग मोक्षपद प्राप्त कर सकेंगे।'

यह सुनकर आकाशराजाने आनन्द-विभोर हो उस कन्याको उठा ले जाकर अपनी पत्नी धरणी देवीके हाथोंमें दिया और कहा—'यह कन्या साक्षात् लक्ष्मी हैं, जो हमें अपने पूर्वजन्मके पुण्यसे प्राप्त हुई हैं।' तब धरणी देवी खुशी-खुशी उस कन्याको अन्तःपुरमें ले चलीं।

आकाशराजाने अपने दरबारके सभी ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की कि इस कन्याका नामकरण किया जाय। ब्राह्मणोंने कन्याका नाम पद्मावती रक्खा और उसे अनेक शुभ आशीर्वाद दिये। राजाने उन्हें दान-दक्षिणा देकर संतुष्ट किया। धरणी देवी पद्मावतीको बड़े लाड़-प्यारसे पालती रही। इस तरह कुछ वर्ष बीत गये।

पद्मावती सयानी हो गयी। वह अपनी सखियोंसे खेलती हुई बड़े आनन्दसे समय बिताती थी। एक दिन नारद मुनि बूढ़ेके वेषमें आकर उसके सामने खड़े हुए। उन्हें देखकर वह बहुत डर गयी और अपनी सखियोंके पास भाग जानेको उद्यत हुई। तब नारदजीने उससे कहा—'बेटी! मुझसे डरो मत। मैं कोई पराया नहीं हूँ। मैं तुम्हारा कुलगुरु हूँ।' तब पद्मावती उन्हें प्रणाम करके लज्जाके मारे चुपचाप खड़ी रही। नारदने मुस्कराते हुए कहा—'बेटी! डरो मत। तुम अपना बायाँ हाथ मुझे दिखाओ।' यह कहकर नारद वहाँ बैठ गये। पद्मावतीने अपना बायाँ हाथ फैलाया तो नारदने उसे अपने दायें हाथमें लेकर देखते हुए यों कहा—'तुम्हारा हाथ सर्व शुभ लक्षणोंसे शोभित है। इस हाथकी-जैसी रेखाएँ साधारण मनुष्योंके हाथोंमें अप्राप्य हैं। सुनो, अब तुम्हें इन रेखाओंके कुछ शुभ लक्षण बता रहा हूँ। तुम्हारे हाथमें मत्स्य, कूर्म, छत्र तथा चामरके आकार-वाली रेखाएँ हैं, जिनका फल यह होना चाहिये कि स्वयं भगवान् विष्णुसे तुम्हारा विवाह होगा। तुम्हारे सर्वाङ्ग शुभ लक्षण देखकर विष्णुदेव तुमसे प्यार करेंगे।' यह सुनकर पद्मावतीने लज्जावश आँखें मूँद लीं और मनमें विष्णुका ध्यान किया। फिर इस गुप्त वेषधारीको प्रणाम करके आँखें खोलकर देखा तो सामने नारदजी निजी रूपमें प्रत्यक्ष हैं। उन्हें देखकर पद्मावती अत्यन्त हर्षित हुई और उन्हें प्रदक्षिणा-पूर्वक प्रणाम किया। तब वे उसे अनेक आशीर्वाद देकर चले गये। तबसे वह सर्वदा विष्णुके ध्यानमें लगी हुई समय बिताती रही।

उधर शेषाचलपर वकुला देवी श्रीनिवासकी सेवा करती रही। वे वल्मीकमें सुखसे अपना समय बिता रहे थे। एक दिन उन्होंने वकुलासे कहा—'माँ! मैं मृगया खेलने जाऊँगा और इस क्षेत्रमें रहनेवाले भक्तोंसे मिलूँगा। हिंस्र पशुओंकी बाधासे उनकी रक्षा करके वापिस आ जाऊँगा।' यह सुनकर

वकुलाने कहा—'वत्स ! तुम मृगया खेलने तो जाओ, पर जल्दी लौट आना।' ऐसा कहकर वकुलाने खीर तथा अनेक प्रकारकी खाद्य वस्तुएँ बनायीं और श्रीनिवासको खूब खिलाया। बाद उन्हें आवश्यक शिकारी वेश-भूषा दी। वे हाथमें तीर-कमान लिये हुए शिकारीके वेषमें खड़े हो गये। उन्हें देखकर वकुला सोचमें पड़ गयी कि ये यज्ञरक्षा करनेके लिये विश्वामित्रके साथ जानेवाले रामचन्द्र हैं या दुष्ट कंसका वध करने जानेवाले कृष्ण। वह चकित होकर उन्हें देखती रह गयी। श्रीनिवास तो सब तरहसे तैयार होकर श्वेताश्वपर चढ़े और वकुला देवीकी अनुज्ञाके लिये पलभर ठहरे। तुरंत वकुलाने उनसे कहा—'बेटे ! शीघ्र जाकर सकुशल लौट आओ।'

श्रीनिवास घोड़ेपर सवार हो जंगलमें प्रविष्ट हुए। रास्तेमें हिंस्र पशुओंका शिकार किया और पुण्य-स्थलोंमें रहनेवाले भक्त लोगोंका कुशल-समाचार मालूम कर लिया। कुछ दूर चलनेके बाद उन्हें एक मस्त हाथी दीख पड़ा। वह बहुत दूरतक उनका पीछा करता हुआ चला गया और आखिर आकाशराजाके उस उद्यानवनमें जा पहुँचा जो नारायणपुरम्‌में अगस्त्याश्रमके पास है। वहाँ हाथीने पीछेकी ओर मुड़कर श्रीनिवासको देखा और सूँड़ ऊपर उठाकर प्रणाम किया। फिर जोरसे चिग्घाड़कर चला गया।

उस समय वहाँ उद्यानवनमें पद्मावती अपनी सखियोंके साथ पुष्पचयन कर रही थी। हाथीकी यह चिग्घाड़ सुनकर वे सब भयभीत हो गयीं। सखियाँ पद्मावतीके पास आकर बोलीं कि 'अब हम अन्तःपुरको चली जायँ।' इतनेमें श्रीनिवास पद्मावतीको देखकर उसके पास आने लगे। उन्हें देखकर पद्मावती अपनी सखियोंसे बोली कि 'देखो, कोई किरात हमारी तरफ आ रहा है। तुम उसके पास जाकर उसका सारा वृत्तान्त मालूम कर लो और उससे कहो कि इस उपवनमें उसको मृगया नहीं खेलना चाहिये।'

पद्मावतीकी आज्ञाके अनुसार वे सखियाँ श्रीनिवासके पास चलीं और उनसे यों पूछा—'तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कहाँसे आये हो और इस उपवनमें क्यों घुस आये ? इस उपवनमें तुमको मृगया नहीं खेलना चाहिये। ये सब समाचार जान लेनेके लिये हमें अपनी राजकुमारीने यहाँ भेजा है।' श्रीनिवासने उनसे कहा कि 'मैं अपना सारा वृत्तान्त तुम्हारी राजकुमारीको ही बताऊँगा।' फिर वह उनके साथ पद्मावतीके पास पहुँचा और कहा—'मैं एक मस्त हाथीका पीछा करते हुए यहाँ आ गया। बताओ, वह हाथी अब कहाँ चला गया ?' यह सुनकर पद्मावती और उसकी सखियाँ उन्हें पागल समझकर हँस पड़ीं। तब वे भी हँस पड़े। फिर पद्मावतीने उनसे अनेक प्रश्न किये—'तुम कौन हो ? तुम इस मस्त हाथीका पीछा करते हुए कहाँसे आ रहे हो ? तुम्हारा गाँव कौन-सा है ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे माँ-बाप कौन हैं ?'

श्रीनिवासने इन प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार दिया—'मैं शेषाचलपर रहनेवाला हूँ, मेरा वंश सिंधुओंका वंश है। मेरे पिताका नाम वासुदेव है और माताका नाम देवकी है। मेरे भाईका नाम बलराम है। सुभद्रा मेरी बहन और अर्जुन मेरा मित्र है। पाँचों पाण्डव मेरे बान्धव हैं। कृष्णपक्षके अष्टमी दिवसको मेरा जन्म हुआ। मैं काला हूँ। इसलिये माँ-बापने मुझे कृष्ण नाम दिया। यही है मेरा वृत्तान्त। अब मैं तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहता हूँ। इसलिये तुम अपने माँ-बापके नाम, अपने कुल-गोत्र आदि सब सविस्तर बताओ।' तब पद्मावतीने कहा—'मैं आकाशराजाकी पुत्री हूँ। मेरा नाम पद्मावती है। मेरी माँ धरणी देवी है। मेरा वंश चन्द्रवंश है और गोत्र अत्रिका है।' ये वचन सुनकर श्रीनिवासने उनसे कहा—'तब तो मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ और तुम भी इसको स्वीकार करो।' यह सुनते ही पद्मावती बेहद क्रोधमें आकर बोली—'रे मूर्ख ! तू क्या बकता है ? चल अभी इस उपवनको छोड़कर चला जा।' श्रीनिवास पद्मावतीके और भी पास आकर बोला—'मेरा मन तुमपर लगा है। किसी भी तरह तुमसे मेरा विवाह होना ही चाहिये। इसीलिये मैं तुमसे ऐसा बोलता हूँ।' इसपर पद्मावती बोली—'हमारी आज्ञा लिये बिना तू इस उपवनमें घुस आया इसलिये अपनी सखियोंके द्वारा तुझे कठिन दण्ड दिलाना चाहती हूँ। तुझे पागल समझकर अभीतक तुझसे इतनी बातें बोलीं। शायद इसीलिये तू इस तरह बढ़-बढ़कर बक रहा है। अब तू एक क्षण भी यहाँ रहेगा तो तेरी जानकी खैर नहीं। तुरंत यहाँसे चला जा।' फिर श्रीनिवासने कहा—'मेरी जान लेना तुम्हारे वशकी बात नहीं है। मैं तुम्हारे प्राणोंका भी प्राण हूँ। तुमको मुझसे अवश्य विवाह करना चाहिये।' ऐसा कहकर श्रीनिवास पद्मावतीके निकट जाने लगा। अब पद्मावती अपना क्रोध नहीं सँभाल सकी और तुरंत अपनी सखियोंसे श्रीनिवासपर पत्थर फेंकवाये। तब वे पत्थरोंके प्रहारसे अपनेको बचाकर वहाँसे भाग चले और सीधे

वल्मीकमें जा मौन साधकर लेट गये । वहाँ उपवनमें पत्थरों-की मारसे श्रीनिवासका घोड़ा मूर्छित हो गया ।

श्रीनिवासको पत्थरोंसे मार भगानेके बाद पद्मावती और उसकी सखियोंने शीघ्र अन्तःपुरको लौट जाना चाहा । परंतु श्रीनिवासपर पत्थर फिंकवानेके बादसे पद्मावतीके मनकी प्रकृति बदल गयी । वह न उद्यानमें रहना चाहती थी, न अन्तःपुर-को चलना चाहती थी । वह कुछ भी नहीं बोल सकती थी । श्रीनिवासका जो रूप उसके मन-मुकुरपर प्रतिबिम्बित था, अब वह उसके हृदयमें अङ्कित हो गया । वह स्तब्ध रह गयी । पद्मावतीकी यह हालत देखकर सखियाँ सहम गयीं और तुरंत उसे रथपर बिठाकर अन्तःपुरमें ले चलीं । फिर उन्होंने धरणीदेवीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया । तदनन्तर यह सब समाचार आकाशराजाको मालूम हुआ तो उन्होंने तुरंत गुरु शुक महर्षिको बुलवाकर उनसे सब कुछ निवेदन किया । शुकने कहा—'पद्मावती उपवनमें रहते समय डर गयी और इसी कारणसे उसका मन चञ्चल हो गया । उसको स्वस्थ करनेके लिये एक उपाय बताता हूँ, सुनो । अगस्त्यके आश्रममें शिवकी जो मूर्ति है, ग्यारह ब्राह्मणोंसे उसका अभिषेक करवाकर, वह पवित्र जल पद्मावतीपर छिड़कनेसे वह स्वस्थ हो जायगी ।' यह सुनकर राजाने अभिषेकके लिये आवश्यक सामग्री मँगवायी और ग्यारह ब्राह्मणोंको बुलवाकर शिवका अभिषेक करनेके लिये उनसे प्रार्थना की । वे ब्राह्मण तुरंत अगस्त्यके आश्रममें चले गये और वहाँ यथाविधि शिवका अभिषेक करते रहे ।

इधर शेषाद्रिपर वल्मीकमें श्रीनिवास मौन साधे लेटे थे । वकुलादेवी स्वादिष्ट भोजन बनाकर श्रीनिवासके पास ले चली और उनसे बोली—'बेटे ! उठकर स्नान करो । अब भोजन करनेका समय हो गया ।' पर श्रीनिवासने कुछ भी जवाब नहीं दिया । वह चुप रह गया । फिर वकुला बोली—'हे श्रीनिवास ! दिनमें सोनेकी तुम्हारी आदत नहीं है । अब क्यों तुम इस तरह लेटे हुए हो ?' यह कहकर उसने श्रीनिवासकी तरफ देखा तो उनकी आँखें खुली हुई हैं, वह कुछ भी नहीं बोलते ।' यह देखकर वकुलाने उनसे पूछा—'वत्स ! तुमने इस तरह मौन क्यों साध रक्खा है ? मृगया खेलते समय क्या तुमने किसीको हानि पहुँचायी है या भक्त लोगोंको हिंस्र पशुओंसे कोई बाधा मिली है ?' वकुलाने इस तरह उनसे अनेक प्रश्न किये, पर उन्होंने किसीका भी उत्तर नहीं दिया । आखिर वकुलाने पूछा कि 'क्या तुम किसी सुन्दरीको देखकर उसपर मोहित हुए हो ?' यह प्रश्न सुनकर श्रीनिवासने सम्मतसूचक ढंगसे अपना सिर हिलाया । तब वकुलाने कहा—'तब तो शीघ्र उठो और स्नान करके भोजन करो । मैं उस भाग्यशालिनीका पता लगाऊँगी, जिसने तुमको मुग्ध कर दिया और उससे तुम्हारा विवाह करूँगी ।' यह सुनकर श्रीनिवास संतुष्ट हुए और स्नान करके उन्होंने भोजन किया । तब वकुलाने श्रीनिवाससे पूछा—'तुम जिसपर मोहित हुए हो, वह सुन्दरी कहाँ है ? उसके कुल, गोत्र और नाम क्या हैं ? तुम क्यों उससे विवाह करना चाहते हो ? उससे तुम्हारी भेंट कैसे हुई ? ये सब बातें सविस्तर कहो ।'

वकुलाके ये सब प्रश्न सुनकर श्रीनिवासने यों कहा—'माँ ! यहाँसे एक योजनकी दूरीपर नारायणपुरम् नामक एक नगर है । वहाँ आकाशराजा नामक एक चन्द्रवंशी राजा राज्य करता है । पद्मावती नामकी उसकी पुत्री उपवनमें फूल तोड़ रही थी । उस समय मैं एक मस्त हाथीका पीछा करता हुआ उस उद्यानमें प्रविष्ट हुआ । वहाँ उस मस्त हाथीने पीछे मुड़कर सूँड ऊपर उठाकर मुझे प्रणाम किया और बड़े जोरसे चिग्घाड़कर चला गया । वहाँ दिव्य सुन्दरी पद्मावती-को देखकर मैं उसपर मोहित हो गया । उसे अपनी इच्छा बताकर मुझसे विवाह करनेको कहा । यह सुनकर वह बड़े क्रोधमें आयी और अपनी सखियोंसे मेरे ऊपर पत्थर फिंकवाये । मगर मैं इसके बदलेमें कुछ भी नहीं कर सका; क्योंकि उसपर मेरा मन लगा हुआ है । उन पत्थरोंकी मारसे अपनेको बचाकर यहाँ भाग चला । मेरा घोड़ा तो पत्थरोंके प्रहारसे घायल होकर वहीं मूर्छित हो गया । किसी भी तरहसे हो, अब पद्मावतीसे मेरे विवाहका प्रयत्न करना चाहिये ।'

यह सब सुनकर वकुलाने फिर श्रीनिवाससे पूछा कि 'तुम पद्मावतीसे ही क्यों विवाह करना चाहते हो ।' यह सुनकर श्रीनिवासने फिर कहना शुरू किया—'माँ ! मैंने रामावतारमें रावण और कुम्भकर्णका वध करके विभीषणको लंकाका राज्य दिया । सीता कुछ कालतक लंका-में रही । इसलिये सीतासे अग्निप्रवेश कराया गया । इस अवसरपर अग्निदेवने मुझे दो सीताओंको सौंपा । तब मैंने अग्निदेवसे पूछा कि यह दूसरी सीता कौन है ?

'अग्निदेवने कहा—यह वेदवती है । वह पिताकी इच्छा-के अनुसार विष्णुदेवसे विवाह करनेके लिये हिमाञ्चल प्रान्त-

में तपस्या करती रही। रावणने उससे मिलकर अपनेसे विवाह करनेको कहा। वेदवतीने इन्कार किया और उसे अपनी इच्छा स्पष्ट बता दी। फिर भी रावण उसकी बातपर ध्यान न देकर उससे बलात्कार करनेको उद्यत हुआ। लाचार होकर वेदवतीने अपनी तपस्याकी महिमासे वहाँ अग्निकुण्ड तैयार किया और रावणको यह शाप देकर उसमें प्रवेश किया कि मेरी-जैसी स्त्रीके द्वारा तुम अपने वंशसहित निर्मूल हो जाओ।

'तब वेदवतीको मैंने अपनी पत्नी स्वाहादेवीके पास रक्खा। जब रावण सीताको ले जा रहा था, तब उससे मिलकर मैंने कहा—"हे रावण! निजी सीता मेरे पास है। श्रीरामने उसको मेरे पास रक्खा है। तुम जिसको लिये जा रहे हो वह माया सीता है। मैं निजी सीताको तुम्हें सौंप दूँगा। इसलिये तुम माया सीताको छोड़ दो, इसे ले जाओ।" रावणने इन बातोंका विश्वास करके निजी सीताको छोड़ दिया और वेदवतीको ले चला।'

श्रीनिवासने फिर कहा—'माँ! सुनो, तब सीताने प्रणाम करके मुझसे प्रार्थना की कि जिसने मेरे लिये लंकामें कई कष्टोंको उठाया ऐसी वेदवतीको स्वीकार कीजिये। सीताको अपनी स्वीकृति-सम्मति देकर मैंने कहा कि "मैं इस अवतारमें एकपत्नीव्रतका पालन करता हूँ और इसीलिये कलियुगमें वेदवतीसे अवश्य विवाह करूँगा।" अपने इसी वचनके अनुसार अब मुझे पद्मावतीसे विवाह करना चाहिये।'

श्रीनिवासकी ये सब बातें सुनकर वकुला चकित हो गयी और उनसे कहा कि 'मैं अभी जाकर धरणीदेवीसे मिलूँगी और उन्हें समझाकर यह कार्य सम्पन्न करूँगी।'

वकुला उसी क्षण वहाँसे निकली और नारायणपुरम्की तरफ चली। कुछ दूर जानेके बाद रास्तेमें उसने देखा कि अगस्त्यके आश्रमके पास बड़े वैभवसे शिवकी पूजा चल रही है। तब उसने वहाँकी दासियोंसे पूछा कि 'वहाँ क्या हो रहा है?' उन्होंने यों कहा—'नारायणपुरम्के राजा आकाशराजाकी पुत्री पद्मावती अपने उपवनमें जब विहार कर रही थी तब एक किरात मृगया खेलता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वह पद्मावतीको देखकर पागल-सा हो गया और उससे विवाह करनेको कहा। यह सुनकर पद्मावती बड़े क्रोधमें आयी और अपनी सखियोंके द्वारा उसपर पत्थर फेंकवाये। उस समयसे लेकर पद्मावतीका चित्त चञ्चल है। उसे स्वस्थ करनेके लिये अब यहाँ शिवका अभिषेक किया जा रहा है। अभिषेकका पवित्र जल उसपर छिड़का जायगा।' यह कहकर उन्होंने वकुलासे पूछा कि 'तुम कौन हो और कहाँ जा रही हो?' वकुलाने जवाब दिया कि 'मैं धरणीदेवीके दर्शन करने जा रही हूँ।' इतना कहकर वकुला नारायणपुरम्की तरफ बढ़ गयी।

उधर वकुलाके शेषाचल छोड़नेके दूसरे ही क्षणसे श्रीनिवासका मन बड़े संदेहमें पड़ गया कि वकुलाके द्वारा कार्य सफल होता है या नहीं। इसलिये वे स्वयं पुलिन्दस्त्री (पुल्कसी) का वेष धरकर नारायणपुरम् रवाना हुए। गोदमें बच्चेको उठाकर अब यह पुलिन्द-स्त्री नारायणपुरम्की गलियोंमें 'भविष्य बताऊँगी' यह कहती हुई घूमने लगी। यह समाचार दासियोंके द्वारा धरणीदेवीको मालूम हुआ तो उसने तुरंत पुलिन्द-स्त्रीको अन्तःपुरमें बुलवाया और उसे एक उचित आसनपर बिठाकर उससे कहा कि 'मेरे मनमें एक प्रबल इच्छा है और उसे ठीक-ठीक बताओगी तो तुम्हें मुँहमाँगी भेंट दूँगी।' यह सुनकर उसने धरणीदेवीसे कहा—'हे रानी! मैं अपने कुलदेवताकी कृपासे सारा भविष्य सही-सही बता दूँगी। इसमें जरा भी संदेह मत करो। मगर पहले मुझे और मेरे बच्चेको भोजन दो। भोजन करनेके बाद मैं भविष्य बताकर तुम्हें संतुष्ट करूँगी।' यह सुनकर धरणीदेवी बहुत खुश हुई और पुलिन्द-स्त्री तथा उसके बच्चेको पाँच प्रकारके भक्ष्य तथा खीरके साथ स्वादिष्ट भोजन दिया। भोजन करनेके बाद पुलिन्द-स्त्रीने ताम्बूल माँगा और तुरंत उसे वह दिया गया। फिर उसने धरणीदेवीको स्नान करके आनेको कहा। इतनेमें पुलिन्द-स्त्रीने अपनी टोकरीसे आवश्यक सामग्री बाहर निकालकर रख दी और हाथमें मंत्र-दंड-जैसी एक लकड़ी लेकर भविष्य कहनेके लिये तैयार बैठ गयी। धरणीदेवीने स्नान करके दुकूल वस्त्रोंको पहन लिया और पुलिन्द-स्त्रीके पास आ बैठीं। तब उसने रानीसे पूछा कि 'तुम्हारा कुलदेव कौन है?' धरणीदेवीने जवाब दिया कि हमारा कुलदेव शेषाद्रिवासी है। तब पुलिन्द-स्त्रीने इस तरह भविष्य बताना शुरू किया।

'माँ! तुम्हारी बात सच है। लो, शेषाद्रिवासी तुम्हारे सामने ही है। वह तुम्हारा भविष्य ठीक-ठीक बता सकता है। सुनो, सुनो, हे रानी! जब तुम्हारी पुत्री पद्मावती

उपवनमें विहार करती रही तब श्रीनिवास मृगया खेलता हुआ इस उपवनमें आ पहुँचा। सखियोंके साथ फूल तोड़ती रहनेवाली पद्मावतीका लावण्य देखकर श्रीनिवास उसपर मोहित हो गया और उससे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। पद्मावतीने उसे एक किरात समझकर अपनी सखियों-के द्वारा उसपर पत्थर फिंकवाये। पत्थरोंकी मारसे अपनेको बचाकर वहाँसे जाते समय श्रीनिवासने एक बार पद्मावतीको अपना निजी स्वरूप दिखाया और बाद वहाँसे चले गये। उसी क्षणसे तुम्हारी पुत्रीका मन श्रीनिवासपर लगा और वह अपनी सुध भूली हुई है। यदि श्रीनिवाससे इसका विवाह किया जाय तो इसका मन स्वस्थ हो जायगा। ऐसा नहीं करेंगी तो अनतिकालमें वह मर जायगी।' यह सुनकर धरणीदेवीने पद्मावतीके द्वारा सच्ची बात मालूम कर ली और पुल्कसीसे पूछा कि 'वे यहाँ आकर हमसे विवाहका प्रस्ताव नहीं करें तो श्रीनिवाससे पद्मावतीका विवाह कैसे किया जाय?' तुरंत पुलिन्द-स्त्री बोल उठी कि 'अभी थोड़ी देरमें शेषाद्रिसे एक बूढ़ी औरत कन्याकी खोजमें यहाँ आयेगी और उसके द्वारा सभी कार्य सफल हो जायँगे।' तब पुलिन्द-स्त्री धरणीदेवीसे कई तरहके पुरस्कार पाकर वहाँसे चली गयी। अन्तःपुरसे बाहर आकर श्रीनिवासने, जो अभीतक पुलिन्द-स्त्रीके वेषमें थे, अपना निजी रूप पाया और शेषाद्रि वापिस लौट आये।

तदनन्तर अगस्त्यके आश्रमसे अभिषेकका पवित्र जल लाया गया और वह पद्मावतीपर छिड़का गया। तब दासियाँ एक बूढ़ी औरतके साथ वहाँ आ पहुँचीं और धरणीदेवीसे बोलीं कि वकुलादेवी आपके दर्शन करनेके लिये आयी हैं। धरणीदेवीने वकुलाका स्वागत करके उससे कुशल-समाचार पूछा और उसे एक उचित आसनपर बिठाकर यों प्रश्न किया—'माई! आप कहाँसे आ रही हैं और आपके आगमनका उद्देश्य क्या है?' वकुलाने जवाब दिया—'मैं तुम्हारी पुत्रीके विवाहके बारेमें प्रस्ताव करने आयी हूँ।' यह सुनकर धरणीदेवीने कहा—'हम तो और एक वरकी खोजमें हैं। फिर भी वरके निवास, कुल, गोत्र, नाम, नक्षत्र आदि बतायें तो विवाहपर विचार किया जायगा।' वकुला खुश होकर बोली—'वरका निवास शेषाचल है। उसका वंश चन्द्रवंश है, वसिष्ठ-गोत्र है, उसका नक्षत्र श्रवण है। नाम कृष्ण है। फिर उसके बन्धु-बान्धवोंके बारेमें सुनो। वसुदेव उसका पिता है और देवकी उसकी माता। बलराम उसका वंशभाई है। अर्जुन उसका मित्र और पाण्डव उसके बान्धव हैं। वर सुन्दर, बलवान्, विद्यावान्, धनवान्, बुद्धिमान् एवं सदाचारसम्पन्न पच्चीस वर्षीय युवक है।' यह सुनकर धरणीदेवीने वकुलासे पूछा कि ऐसे 'सर्वशुभ-लक्षणसम्पन्न वरका विवाह अभीतक क्यों नहीं हुआ?' वकुलाने जवाब दिया—'हे रानी! बाल्यहीमें उसका विवाह हो चुका। किंतु संतान-हीनताके कारण उसका दूसरा विवाह करनेका विचार है। बस, बात यही है; इसको छोड़कर उसमें और कोई दोष नहीं है।' यह सुनकर धरणीदेवी संतुष्ट हुई और अपने पति आकाशराजाके पास जाकर उनसे ये सभी बातें सविस्तर कह सुनायीं जो पुलिन्द-स्त्री तथा वकुलासे कही गयीं। सारा वृत्तान्त जानकर आकाश-राजाके आनन्दकी सीमा न रही और उन्होंने श्रीनिवाससे अपनी पुत्रीका विवाह करनेका निश्चय कर लिया।

अब आकाशराजाने बृहस्पतिको बुलवाया और उनसे श्रीनिवासका वृत्तान्त पूछा। उन्होंने कहा—'श्रीनिवासका वृत्तान्त मुझे अच्छी तरह नहीं मालूम है, परंतु सदा उसी क्षेत्रमें रहनेवाले शुक महर्षि उसका वृत्तान्त खूब जानते हैं। इसलिये उन्हें बुलवाकर मालूम कर लीजिये।'

तुरंत आकाशराजाने अपने भाई तोंडमानको बुलवाकर कहा—'भाई! अभी शुकके आश्रमको जाओ और उनसे ऐसा कहकर लिवा लाओ कि आकाशराजाने पद्मावतीके विवाहके विषयमें परामर्श करनेके लिये आपको बुलाया है।' तोंडमान शीघ्र शुकके आश्रमको चले गये और उन्हें राजाका संदेश सुनाकर साथ लिवा लाये। शुक मुनीन्द्रको देखते ही राजाने दण्ड-प्रणाम करके उनका स्वागत किया और एक उचित आसनपर बिठाकर उनसे इस प्रकार बोले—'हे मुनीन्द्र! मैंने शेषाद्रिवासी श्रीनिवाससे अपनी पुत्री पद्मावती-का विवाह करनेके विषयमें परामर्श करने आपको बुलाया है। इसलिये अब आपसे श्रीनिवासका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ।'

शुक मुनीन्द्रने श्रीनिवासका वृत्तान्त कहना आरम्भ किया—'हे राजा! श्रीनिवास साक्षात् परब्रह्म हैं। ऋषि-मुनिलोग उनके दर्शन प्राप्त करनेके लिये अनेक वर्षोंतक घोर तपस्या करते हैं। सब भोग-विलास छोड़कर केवल कंद-मूल-फलपर निर्भर रह जो सदा-सर्वदा उन्हींके चिन्तन, मनन और भजनमें अपनेको अर्पित कर देते हैं, उन्हें भी उनका दर्शन-लाभ दुर्लभ ही होता है। इसलिये यह आपका परम सौभाग्य है कि स्वयं भगवान् आपके जामाता बनते हैं जो अनेक जन्मोंके पुण्यफलके कारण ही सम्भव हो सकता है। इस कन्यादानके द्वारा आपके कई पीढ़ियोंके लोग भगवान्के कृपापात्र बन सकते हैं। इसलिये आप इस कार्यमें विलम्ब मत करें। शीघ्र आप अपने बन्धु-बान्धवोंको बुलवाकर यह शुभ कार्य सफल करें। इससे आपका जन्म पवित्र हो

जायगा और आपके पितर लोग वैकुण्ठवासी बनेंगे। आपके कारण इस विवाहके शुभ अवसरपर हम परमात्माके दर्शन करेंगे।' यह सुनकर आकाशराजाने उसी समय अपने सब बन्धु-बान्धव तथा मित्रोंको बुलवाकर उनसे कहा—'भाइयो! मैंने श्रीनिवाससे अपनी पुत्री पद्मावतीका विवाह करनेका निश्चय किया है। इसके लिये आपलोग अपनी सम्मति दें तो मैं अभी इस सभामें प्रतिज्ञा कर दूँगा।' यह सुनकर वे सब प्रसन्न हुए और एककण्ठसे बोल उठे कि आपका यह प्रस्ताव हम सबको स्वीकार है। तब राजाने उन सबके सामने श्रीनिवाससे अपनी पुत्री पद्मावतीका विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की। फिर वे सब खुशी-खुशी अपने-अपने स्थानको लौट गये।

आकाशराजाने अन्तःपुरमें जाकर धरणी देवीसे यों कहा—'तुम शेषाचलसे आयी हुई वकुला देवीको विवाहके निश्चयका यह शुभ समाचार बताकर उसे शेषाचल भेज दो।' उसी तरह धरणीदेवीने वकुलासे यह कहकर भेज दिया कि 'आपका कार्य सफल हुआ है और शीघ्र जाकर श्रीनिवाससे यह शुभ संवाद कह दीजिये।' तदनन्तर आकाशराजाने शुक मुनीन्द्रके परामर्शसे श्रीनिवासके लिये भी एक पृथक् पत्रिका भेजी, जिसमें अपनी पुत्री पद्मावतीको विवाह कर अपनी भार्या बनानेकी प्रार्थना श्रीनिवाससे की गयी थी। आकाशराजाका यह पत्र लेकर स्वयं शुकदेवजी शेषाचल पहुँचे, जिन्हें देखते ही श्रीनिवास प्रणामकर गले मिले। आशीर्वचनके साथ शुकदेवजीने शुभ संवाद-सूचक आकाशराजाकी वह पत्रिका श्रीनिवासके कर-कमलोंमें समर्पित कर दी। श्रीनिवास यह पत्रिका पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए और तत्क्षण ही उन्होंने अपना स्वीकृति-सूचक पत्र आकाशराजाके नाम लिखकर शुकदेवजीके हवाले कर दिया।

इधर पत्रोंके आदान-प्रदानके बाद नारायणपुरम्से उसी समय लौटी वकुलाके निकट जा श्रीनिवासने प्रणाम कर समाचार पूछा। वकुलाके द्वारा सब वृत्त जानकर श्रीनिवासने विवाहके लिये आवश्यक तैयारियाँ करनेके निमित्त शेष और गरुड़के द्वारा ब्रह्मा आदि सभी देवताओंको बुलवाकर उनसे कहा—'मैंने आकाशराजाकी पुत्रीसे विवाह करनेका निश्चय कर लिया है। हमें इष्ट-मित्रों और परिवारके साथ आकाशराजाके नगरको पहुँचना है। विवाहकी शुभ तिथि वैशाख शुक्ल दशमी है। अतः इसके पूर्व ही हमें यहाँके सब कार्य समाप्त करना है। हे ब्रह्मा! इस विवाहकार्यके लिये आवश्यक धन मेरे पास नहीं है, अतः कार्यकी सफलताके लिये ऋण लेना आवश्यक होगा। यह कार्य आपको करना चाहिये।' श्रीनिवासके ये वचन सुनकर सभी देवगण आनन्दसे भर गये। तब ब्रह्माने कुबेरसे कहा—'इस विवाहकार्यके लिये श्रीनिवासको कुछ ऋण दिया जाय।' कुबेरने जवाब दिया—'केवल मौखिक आधारपर किसीको भी ऋण कैसे दिया जा सकता है? स्वर्ण, आभूषण, घर या जमीन गिरवी रक्खे बिना ऋण देना सम्भव नहीं है।' यह सुनकर ब्रह्मा बोले—'अब श्रीनिवासके पास न स्वर्ण है, न घर है। गिरवी रखनेके लायक कोई भी चीज नहीं है। इसलिये ऋण-पत्र लेकर एक करोड़, चौदह लाख रामिनिष्कोंका ऋण दो। हर वर्ष एक लाख रामिनिष्कोंका ब्याज चुकाया जायगा और कलियुगके अन्तमें पूरा मूलधन चुकाया जायगा।' कुबेरने यह स्वीकार कर श्रीनिवाससे उसी तरह एक ऋणपत्र लिखा लिया। इस ऋणपत्रके साक्षी बने ब्रह्मा और पुष्करिणीके किनारेपर रहनेवाले पीपलके दो पेड़।

कुबेरसे धन लेकर विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। सब देवतागण भिन्न-भिन्न कार्योंमें नियुक्त किये गये। तदनन्तर ब्रह्माने जाकर श्रीनिवाससे कहा—'सब कुछ तैयार है और शीघ्र मङ्गल-स्नान कीजिये।' परंतु अब श्रीनिवासका मन लक्ष्मीकी अनुपस्थितिके कारण बहुत व्याकुल था। श्रीनिवासकी यह मनोव्यथा अनुभव कर ब्रह्माने श्रीनिवाससे कहा—'आप क्यों इस तरह व्याकुल होते हैं? हममेंसे किसी एकको भी अभी लक्ष्मीको लाने भेज दीजिये।' तब श्रीनिवासने सूर्यको बुलाकर उनसे कहा—'तुम करवीपुर जाकर लक्ष्मीको लिवा लाओ।'

श्रीनिवासके आज्ञानुसार सूर्य करवीपुर पहुँचे। वहाँ लक्ष्मीको नमस्कार कर उनसे श्रीनिवासकी बात कह सुनायी और उन्हें रथपर बिठाकर शेषाचल आ पहुँचे। तब श्रीनिवास लक्ष्मीके सामने आये। इस प्रकार सामने आये पतिको देख लक्ष्मीदेवी तत्क्षण रथसे नीचे उतरीं और भक्तिपूर्वक उनके पाँव धोकर चमेलीके फूलोंसे उनकी पूजा की। फिर उन्होंने कपट-नाटकके सूत्रधार श्रीनिवाससे पूछा कि 'अब मुझे बुलानेका क्या हेतु है?' श्रीनिवासने उत्तर दिया—'हे लक्ष्मी! मैंने रामावतारमें तुमको जो वचन दिया था, उसे पूरा करनेका अब समय आ गया है। इसलिये तुम्हारी इच्छाके अनुसार अब वेदवतीसे विवाह करनेको तैयार हूँ।' श्रीनिवासके ये वचन सुन लक्ष्मी परम संतुष्ट हुईं। इस बीच ब्रह्माने लक्ष्मीसे कहा—'विलम्ब हो रहा है, श्रीनिवासका मङ्गल-स्नान करानेकी तैयारी कीजिये।'

(क्रमशः)

मधुर

दिव्य प्रेमकी परमोज्ज्वल चिदानन्दमयी मूर्ति श्रीराधाजी श्यामसुन्दरसे कहती हैं—

देख रही सुन रही सभी जो
सुनने और देखने योग्य।
पर मैं जुड़ी सदा ही तुमसे
भोक्ता तुम्हीं, तुम्हीं सब भोग्य ॥
मेरा दर्शन श्रवण हो रहा
सभी सहज तुममें संन्यस्त।
मुझे बना माध्यम तुम रखते
नित सेवा-लीलामें व्यस्त ॥
सुनना कहना तथा देखना
करना सब चलता अश्रान्त।
होने पर देते न कभी तुम
उनसे भ्रान्त तथा आक्रान्त ॥
कर तुम रहे विविध लीला
सब बना नगण्य मुझे आधार।
नित्य दिव्य बल कला शक्ति
निजसे करते लीला विस्तार ॥

मेरे श्यामसुन्दर! जो कुछ भी यहाँ सुनने और देखनेयोग्य है, वह सभी मैं सुन भी रही हूँ और देख भी रही हूँ। पर वस्तुतः अन्तरसे तो सदा-सर्वदा ही केवल तुम्हींसे जुड़ी हूँ, यथार्थमें तुम्हीं भोक्ता हो और सारे भोग्य भी तुम्हीं हो। देखने-सुननेवाले भी तुम्हीं हो और देखने-सुननेके सारे पदार्थ भी तुम्हीं हो। मेरा देखना और मेरा सुनना—सभी सहज ही केवल तुम्हींमें संन्यस्त हो रहा है। मुझे माध्यम बनाकर तुम्हीं मुझे नित्य सेवा-लीलामें संलग्न रखते हो। इसीसे सुनना, देखना, कहना और करना—यहाँ सभी कुछ निरन्तर चल रहा है। पर इस सुनने-देखने आदिसे मुझे न तो कभी तुम भ्रममें पड़ने देते हो और न वे क्रियाएँ मुझपर कोई भी प्रभाव ही डाल सकती हैं। तुम मुझे कभी इस भ्रममें नहीं पड़ने देते कि मेरी इन्द्रियाँ, मेरे सुखके लिये विषयोंमें लगी हैं और न कभी इन्द्रिय तथा उनके कोई भी विषय मुझपर आक्रमण करके मुझे अपने वशमें कर सकते हैं। वस्तुतः मुझ नगण्यको आधार बनाकर तुम्हीं विविध प्रकारकी समस्त लीलाएँ कर रहे हो। इन लीलाओंमें जो दिव्यता है, वह तुम्हारी ही है। तुम ही अपने दिव्य बल, दिव्य कला और दिव्य शक्तिसे नित्य-निरन्तर लीलाका विस्तार कर रहे हो।

चरण तुम्हारे पावनमें आ
बसी पूर्ण मेरी आसक्ति।
भोग-राग मिट गया, हुई
प्राणोंकी तुममें ही अनुरक्ति॥
नहीं छोड़ने देते ममता
मुझे, छोड़ते कभी न आप।
एकमात्र ममतास्पद मेरे
तुम्हीं बने रहते बे माप ॥
सब कर्मोंका प्रेरक है अब
केवल यह ममता-संबन्ध।
बँधी इसीमें मैं, तुमने भी
है स्वीकार किया यह बन्ध ॥
स्वयं बँधे ममतामें, मुझको
बाँध किया मायासे मुक्त।
रहे देख यों मुझे, देखता
भोगोंको ज्यों विषयासक्त ॥

श्यामसुन्दर! मेरी सारी आसक्ति पूर्णरूपसे केवल तुम्हारे पावन चरणोंमें ही आकर सदाके लिये बस गयी है। लोक-परलोकके भोगोंका सारा अनुराग नष्ट हो गया है। मेरे प्राणोंकी केवल तुम्हींमें अनुरक्ति हो गयी है। तुमने मेरी सारी ममताको केवल अपनेमें ही लगा लिया है, उस ममताको मुझे कभी छोड़ने देते ही नहीं। केवल तुम्हीं एकमात्र 'मेरे' हो, यह अनुभव कभी तनिक भी हटता ही नहीं और न तुम ही मेरे प्रति अपनी ममताका त्याग करते हो—सदा मुझे केवल

अपनी ही वस्तु मानते हो। प्रियतम! केवल तुम्हीं एकमात्र सदा-सर्वदा मेरे परिमाणरहित ममतास्पद बने रहते हो। मेरे सारे कर्मोंका यदि कोई प्रेरक है तो वह केवल यह अनन्य ममताका सम्बन्ध ही है। मैं सदा इसीसे बँधी हूँ और तुमने भी इस पवित्र ममताके बन्धनको स्वीकार कर लिया है। मुझे मायासे मुक्त करके तुमने अपनी अनन्य ममतासे बाँध लिया है और स्वयं तुम भी मेरी ममतामें बँध गये हो और इसलिये मेरी ओर यों ललचायी दृष्टिसे देखते रहते हो जैसे विषयासक्त मनुष्य विषयभोगोंकी ओर देखता रहता है।

सदुपयोग

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

निर्जन वनमें संत अपनी धूनीके समीप पद्मासन लगाये बैठे थे। मुखमण्डलपर अपूर्व तपस्तेज झलक रहा थां। पास ही दो सिंह-शावक आपसमें कल्लोल कर रहे थे। संतने बोरीलालको देखते ही स्नेहसनी मधुर वाणीमें कहा—'बेटा! यहाँ क्यों आया? चिन्ता तो तेरे घरपर ही बैठी है, जा घरको।'

बोरीलाल संतके वचनोंका अर्थ समझ न सका और विनीत भावसे अपनी व्यथा सुनाने लगा। किंतु अनेक अनुनय-विनय करनेपर भी संत फिर नहीं बोले।

निराश हो वह संतजीको साष्टाङ्ग प्रणाम कर घरकी ओर चल दिया। मार्गमें उसका विचार-प्रवाह चला—''ये कैसे संत हैं! न बात सुनी, न समाधान किया। जनता तो इन्हें उच्चकोटिके संत बताती है। मुझे भी आशा थी कि संत धन-प्राप्तिका कोई कारगर उपाय अवश्य बतायेंगे, जिससे मेरी शारदाके विवाहकी चिन्ता मिटेगी। पत्नीने कहा था—'मैं आपको अकेला कभी नहीं जाने दूँगी। सम्भव है, कोई हिंसक पशु आक्रमण कर बैठे तो मैं साहसके साथ उसका सामना कर आपकी रक्षा करनेमें सहायक बनूँगी।' मैंने पत्नीसे कहा था—'प्रिये! तुम

जाको राखै साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय।

—इसपर अटल विश्वास रक्खो।' इस तरह पत्नीको समझाकर मैं संतके पास आया था। अब खाली हाथ लौटकर पत्नीको कैसे मुँह दिखाऊँगा।'' यह सोचते-सोचते बोरीलाल खिन्न मनसे घर लौट आया। वहाँ जो उसने देखा, उससे उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। एक परिचित व्यक्ति बैठा हुआ इसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

नमस्कारके पहले ही वह व्यक्ति बोल उठा—'यह लो, आपके १०००) रुपये। छः वर्ष बीत जानेपर भी यह निधि आपको देना मैं भूला नहीं था, जिसे आज देकर संतोषकी साँस ले रहा हूँ।'

बोरीलाल रुपये देख एवं व्यक्तिकी बातें सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। भगवान्‌को हजारों धन्यवाद देने लगा। संतकी वाणी सत्य हुई, उसकी मनःकामना सिद्ध हुई। बोला—'भाई साहब! आप इस घोर कलिकालमें मनुष्यके रूपमें देवता हो।'

ओवरसियर बोरीलालके द्वारा रामप्रकाश ठेकेदारको एक बड़ी निधिका पुल बनानेका ठेका दिलवाया गया था और १०००) रुपया दस्तूरी (घूस) लेना निश्चय हुआ था। उसके पश्चात् बोरीलालका स्थानान्तर अन्यत्र हो गया। उस बातको शनैः-शनैः छः वर्ष बीत जानेसे बोरीलाल समझ बैठा था कि अब यह निधि कदापि नहीं आनी है। बोरीलालको जवान पुत्रीके विवाहकी जो चिन्ता थी, वह इस अर्थ-प्राप्तिसे कुछ दूर हो गयी और मनमें उन्हीं संतके दर्शनोंकी लालसा बलवती बन गयी।

(२)

'अरे भाई! यह रिश्वतका पैसा फलता नहीं है। मैंने अपने जीवनमें एक नहीं, अनेक घूसखोरोंको बिगड़ते और दर-दरके भिखारी होते देखा है। सच मानो, मेरे पिताजी रिश्वत नहीं लेते थे और इसी ईमानदारीसे

उन्होंने सरकारी बकायाके कोई दो लाख रुपये, जिसे पहलेके अधिकारियोंने घूस ले-लेकर छोड़ रक्खा था, परगनेके लोगोंसे वसूल करके राजाजीको दिये थे । जिससे नरेश उनकी ईमानदारी, स्वामिभक्ति और कर्तव्य-निष्ठाको देखकर उनपर अत्यन्त प्रसन्न थे । किंतु घूस न लेनेका प्रण होनेपर भी जब वे मौन होकर नित्य भगवान्की पूजा-पाठ करने बैठते, तब अवसर पाकर कोई स्वार्थी घूसकी निधि उनके आसनके नीचे सरका जाता था । पिताजीके द्वारा अस्वीकृतिका संकेत करते रहनेपर भी वह व्यक्ति नहीं मानता । निदान वह निधि तो घरमें रह ही जाती । परंतु उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि पिताजीकी मृत्युके बाद हमारा घर चौपट हो गया । मेरी माताने चक्की पीस एवं खेतोंमें मजूरी कर-करके मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया ।'

बोरीलाल रिटायर्ड तहसीलदार शान्तिकुमारकी उपर्युक्त चेतावनी सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया । पर, अचानक पायी निधिको त्यागनेमें त्याग-भावना चाहिये, जो बोरीलालमें थी नहीं । वह रिश्वत लेनेकी कलामें अभ्यस्त हो रहा था, अतः तहसीलदारकी सत्य बातको स्वार्थवश न मानकर बोला—'अजी साहब ! कई बड़े-बड़े अधिकारी घूस लेकर ऐशो-आरामकी जिंदगी बेखटके बिता रहे हैं, उनका कुछ नुकसान कभी होते देखा नहीं ।' 'बोरी ! भूलो मत, अभी नहीं तो भविष्यमें उन्हें जरूर कुफल मिलनेवाला है ।' तहसीलदारने कहा ।

तहसीलदारका स्पष्ट उत्तर सुनकर बोरीलालके मनमें संदेह और भय उत्पन्न हुआ । क्या मैं ये रुपये ठेकेदारको वापस लौटा दूँ । सयानी शारदाके विवाहके निमित्त पड़ोसी हमें ताने सुनाते हैं । आजकल कालेजका जीवन दूषित गिना जाता है । तब अब क्या करूँ ।

ये विचार बोरीलालके अन्तरमें निरन्तर चलते रहे । एक दिन उसके परम मित्र हरिवल्लभ गोशालाका जीर्णोद्धार कराने हेतु सलाह करनेको आये । नगरसे कुल ४००) रुपया चंदेमें एकत्र हुआ था । ६००) रुपयेकी कमी थी, जो कहाँसे पूरी हो ? बोरीलाल बोला—'देखो, मैं कुछ उपाय सोचूँगा ।'

पत्नी प्रियंवदासे, एक दिन संध्या-समय, बोरीलालने कहा—'सोचा है तुमने, कई भुक्त-भोगियोंने मुझको अपनी बीती सुनाते हुए सावधान किया है कि घूसकी निधि घरकी अन्य पूँजीको भी अपने साथ बरबाद कर देती है । कहीं ऐसा न हो कि शारदाका विवाह इन रुपयोंसे कर देनेपर वह ससुरालमें सुख न पावे; क्योंकि यह खरे पसीनेका पैसा तो है नहीं । जिसे सारी दुनिया बुरा बताती है, वह घूसका—मुफ्तका पैसा घरमें आया है । हमें आगे इज्जत-आबरूसे रहकर ईमानदारीकी आयसे बच्चोंका पालन-पोषण करते हुए उनमें उत्तमोत्तम संस्कार भरने हैं । तुम्हारी क्या सम्मति है ?'

'मेरी इकलौती शारदाका सुहाग अमर रहकर वह पतिकी आज्ञामें चलती हुई खूब सुख भोगे । किंतु यदि इस घूसके धनसे परमात्मा न करे, उसके कुछ अनिष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो धिक्कार है ऐसे पैसेको । मैंने भगवान् सूर्यनारायणकी भक्तिमें तन्मय हो उनके 'आदित्य-हृदय' स्तोत्रमें वर्णित विधिके अनुसार साधना कर पुत्रके समान यह पुत्री पायी है । हे दीनदयाल दिवाकर देव ! आप ही ब्रह्मा, शिव और विष्णुरूप माने गये हैं ।* आपकी शारदा बेटीका बाल भी बाँका न हो ।'

पति उत्तर पानेकी प्रतीक्षामें था । प्रियंवदा मन-ही-मन उपर्युक्त प्रार्थना करती हुई बोली—'जब दूसरा प्रबन्ध नहीं है, तो इन्हीं रुपयोंसे शारदाका विवाह करना होगा । वर भी सुयोग्य मिल गया है, ऐसे सुअवसरको कैसे छोड़ दिया जाय । आप चिन्ता न करें । करुणा-वरुणालय मेरे भगवान् भास्करकी दयासे कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा ।'

बोरीलाल अपने मनमें छिपी लालसाको पुष्ट करनेवाला पत्नीका उत्तर सुनकर प्रसन्न हुआ । पर उसके निष्पाप हृदयके एकान्त कक्षसे धीमी ध्वनि आयी—'खोटा पैसा है, मोह छोड़ इसका ।' उसके चित्तमेंसे दूसरी चेतावनी यह भी ध्वनित हो रही थी—'अभी तो इस निधिका उपयोग कर लो, आगे घूस न लेनेकी तौबा कर दो ।' परंतु करना क्या ? उसे अबतक तो घरमें घूसके इस धनको देख-देखकर अनुपम आनन्द होता रहता था, किंतु अब वही धन काले साँपकी तरह दिखायी दे रहा

* उदये ब्रह्मरूपस्तु मध्याह्ने तु महेश्वरः ।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिस्तु दिवाकरः ॥
(भविष्यपुराण)

है। फिर भी यदि कोई उससे दृढ़तापूर्वक कह दे कि 'अनिष्टकी भावना छोड़, कर दे इसी धनसे पुत्रीका विवाह।' तो बोरीलालको इतना भारी हर्ष हो कि मानो दीनको कारूँका खजाना मिल गया हो। किंतु मनस्तापको मिटानेका कोई आधार उसे नहीं मिला। मन-मस्तिष्क, भावना-भरोसा, भय-निर्भयता सभी उसके अधरमें झूल रहे थे। मनःस्थिति डाँवाडोल होनेसे पश्चात्तापके मारे उसकी यह दशा हो रही थी—

मरकर भी गिरफ्तारे-सफ़र है मेरी हस्ती।
दुनिया मेरे पीछे है, तो उक़्बा[1] मेरे आगे॥
(अर्श मल्सियानी)

पत्नी बोल उठी—'किन विचारोंमें डूबे हो? 'गोशालाका जीर्णोद्धार?' पत्नीके प्रश्नमें मानो यह ध्वनि सुनकर बोरीलाल चौंक पड़ा। बोला—'क्या कहा तुमने? अबकी बार जरा फिर कहना।' 'कहते-कहते दस वर्ष बीत गये। लड़की दो-चार बच्चोंकी माँ भी हो जाती। जाति-बन्धुओंके ताने सुन-सुनकर मेरा तो हृदय छलनी हो गया है, पर आपको परवा नहीं।' पत्नीकी रोषभरी बातें सुनकर बोरीलालको पुनः चिन्ता व्याप गयी। संक्षेपमें बोला—'मैं कुछ सोच रहा हूँ।'

(३)

'बड़े-बड़े संत-महात्माओं, योगी-यतियों, विरक्त-परमहंसों एवं भगवत्-भरोसे रहनेवाले दीनोंके मुखसे मैंने सुना है कि हरि ही सब समय सर्वत्र न जाने किस रूपमें आकर निहाल कर जाते हैं। मुझे तो प्रभुका दृढ़ विश्वास है। वे ४००) के ४००००) पलक मारते कर सकते हैं। नरसी मेहताके मायरेकी कथा प्रसिद्ध है।' इन विचारोंसे बोरीलालके चेहरेपर प्रसन्नता छा गयी और उसने बिना किसी सोच-विचारके ६००)रु० गोशालाके जीर्णोद्धारमें सहर्ष लगा दिये। पत्नीको ज्ञात भी नहीं होने पाया।

इधर, दीनबन्धु श्रीभगवान्‌का स्मरण कर शारदाका विवाह रच दिया गया। पाणिग्रहण-संस्कार हो जानेके पश्चात् जब बरातियोंको भोजन करानेका समय आया, तो भोजन-सामग्रीका पूरा प्रबन्ध, हजारों उपाय करनेपर भी न हो सका। बोरीलाल सब ओरसे निराश हो चुपचाप भवनके एक शान्त कोनेमें छिपकर बैठ अधम-उधारन भगवान्‌से आँसू बहाकर प्रार्थना करने लगा। भोजनका समय ज्यों-ज्यों समीप आता जाता था, त्यों-त्यों उसकी प्रार्थनाका वेग अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। वह श्रीराधाकृष्ण भगवान्‌के पदारविन्दोंमें माथा टेककर, हृदयमें उनके दिव्य स्वरूपका ध्यान करते हुए गद्गद वाणीसे अटल विश्वासके साथ निरन्तर प्रार्थना करता ही गया। भगवान् तो कातर पुकार सुनते ही दौड़े आकर भक्तोंके कार्य सँवारते ही हैं। बोरीलालका आर्त्तनाद भी उन्होंने सुना। उसी समय रामपद बोहरेने आकर विवाह-मण्डपके एक एकान्त स्थानमें थैलीमेंसे कल्दार रुपये उड़ेलकर ढेर कर दिया। वह लंबा-चौड़ा बलिष्ठ व्यक्ति अधिक ब्याजसे ऋण देता और ऋणकी वसूलीमें कर्जदारकी इज्जत बिगाड़नेमें जरा भी संकोच नहीं करता था। इसीसे लोग उसे स्वार्थी, असभ्य, लड़ाकू, लठैत और बेहद सूदखोर मानव समझते थे। आज वह कैसे रुपये लेकर आ गया, यह आश्चर्यकी बात थी।

इसी बीच बोरीलाल भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम कर चरणोदक ले आँसू पोंछता हुआ बाहर आया। उसे देखते ही रामपद बोला—'भाई! जितना रुपया आपको चाहिये, उतना इस ढेरमेंसे ले लीजिये। मैं इन रुपयोंको कभी भी आपसे वापस नहीं लूँगा। यह भगवान्‌की शपथ लेकर कहता हूँ। सच मानो। रुपये लेनेमें संकोच जरा-सा भी मत करो।'

बोरीलाल बड़े असमंजसमें पड़ गया। पर अन्तमें रामपदके बहुत आग्रह करनेसे उसने आवश्यकतानुसार धन लेकर एक बड़े प्रीतिभोजकी व्यवस्था उसी समय कर दी। बोरीलालके मनको संतोष तो हुआ; किंतु इसका भेद किसी-को मालूम नहीं होने पाया।

× × ×

यद्यपि बोरीलालने ६००) रुपये गोशालामें लगाये थे। घरमें केवल ४००) रहे थे; पर बात फूट गयी। केस चला

[1] परलोक।

और बोरीलालको पापके प्रायश्चित्त-स्वरूप कारागारमें भी रहना पड़ा। अब उसके सामने गृहस्थी पालनेकी चिन्ता पुनः आ खड़ी हुई। उसे भारी पश्चात्तापके साथ तहसीलदार-की सीख याद आने लगी।

बेकारीमें कुछ मास वर्षोंकी भाँति बीते। नौकरी पानेके लिये जहाँ भी बोरीलाल गया, वहाँसे इन्कार ही मिला। भूखे रहनेकी घड़ी आ गयी। परंतु 'चींटीको कन, हाथीको मन' देनेवाले प्रभु फिर उसपर सहज ही प्रसन्न हुए। बोरीलालको रामप्रकाश ठेकेदारके यहाँ ससम्मान नौकरी मिल गयी।

परंतु अभी चिन्ता समूल नष्ट होनेका प्रश्न कहाँ। रामपदके रुपये ब्याजसमेत लौटाने हैं—यह चिन्ता बोरीलाल-के मनको निरन्तर ठेस पहुँचाती रहती थी। ईमानदारी, मानवता, मेल-जोल बनाये रखनेकी नीति, प्रत्युपकार करनेकी भावना—अब उसमें पूरे तौरपर उदय हो आयी थी। वह पत्नीसे बोला—'गृहस्थीके सभी खर्चोंमें कमी करके धन एकत्र करो। हम सप्ताहमें दो दिन उपवास करके बालकोंको भरपेट खिलायेंगे। यों पैसा बचाकर रामपदका ऋण चुकायेंगे। वह मानव नहीं देवता है। उसने समाजमें हमारी लाज रखकर हमारी पुत्रीके विवाहका यश लिया है।' पत्नी प्रियंवदाने पतिके आज्ञानुसार बचत करना आरम्भ कर दिया। कौड़ी-कौड़ी जोड़नेसे माया जुड़ जाती है, इस कहावतके अनुसार कुछ दिनोंमें इनके पास ऋण चुकाने योग्य निधि एकत्र हो गयी।

परंतु यह क्या ! रामपद तो रुपये लेता ही नहीं। उसने स्पष्ट कह दिया—"भैया ! आप जानते हैं 'चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय'—मैं इस सिद्धान्तका आदमी हूँ। पर सर्वशक्तिमान् भगवान्ने मुझे स्वप्नमें आज्ञा दी है कि —'नींद छोड़, अभी जाकर बोरीलालके यहाँ विवाहमें रुपयोंका ढेर कर दे। नहीं तो तेरी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जायगी।' मैं इसी भयसे काँपता हुआ रुपयोंसे भरी थैली लेकर तुम्हारे घर आया था। अब जो तुम रुपये लौटाने आये हो, ये मेरे किस कामके ? ये तो श्रीभगवान्के हो चुके।"

इधर, बोरीलालका विशेष आग्रह था कि 'मैं तो ऋण चुकाऊँगा ही अन्यथा अगले जन्ममें न जाने क्या-क्या यातनाएँ देकर यह मुझसे वसूल किया जायगा।' दोनोंने स्नेहभरी हठ पकड़ ली। अन्तमें सोहनलाल शास्त्रीने आकर समझाया कि 'दोनों एक राय मिलाकर इस निधिको किसी धार्मिक कार्यमें व्यय कर दो।' तदनुसार उन रुपयों-से अनाथोंको भोजनकी व्यवस्था करा दी गयी। अनाथ इन्हें अशेष आशीर्वाद देने लगे। नगर-निवासियोंके चित्तपर भी इस पुण्य-कार्य एवं त्याग-भावनाका उत्तम प्रभाव पड़ा।

इस घटनासे रामपदका जीवन ही बदल गया। उसने बोरीलालको अपना गाढ़ा मित्र बना लिया। दोनों एक दूसरेके सुख-दुःखमें सम्मिलित होने लगे।

उत्तरावस्थामें रामपदने कई तीर्थोंकी यात्राएँ कीं और वहाँ पावन नदियोंके घाट जहाँ-जहाँ जीर्ण-शीर्ण हो गये थे, उन सबका जीर्णोद्धार अपने धनसे करवाया। शेष धनका एक धर्मार्थ ट्रस्ट कायम कर दिया। ट्रस्टके ट्रस्टी भी धार्मिक प्रवृत्तिके सज्जन थे। उन्होंने रामपदकी सम्पत्तिका दीनजनोंकी सहायतामें सदुपयोग करनेके सिवा ऐसे पठित युवकोंको तैयार करना आरम्भ किया, जो गाँवोंमें जाकर खेतीकी उपजको बढ़ानेमें पूरी-पूरी दिलचस्पी लें और किसानोंकी आवश्यकताओंको पूरी करानेमें योग दें। इस उपयोगी योजनासे कई बेकार पठितोंको धंधा मिल गया। उनका अनुसरण कर अन्य देशभक्त पुरुष भी दत्तचित्त होकर अन्न, शाक-सब्जी, फलादि अधिक मात्रामें उत्पन्न करने लगे। देशके इस अत्यावश्यक कार्यको परिश्रमके साथ करते रहनेमें इन कार्यकर्ताओंने, अनेक कठिनाइयाँ सामने आनेपर भी कभी हार नहीं मानी। वे जाने हुए थे कि—

मुश्किल मुझे कहती हैं, बस अब काम न कर।
मकसद मुझे कहता है कि आराम न कर॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अंग्रेज व्यापारीकी आदर्श ईमानदारी और सत्यपरायणता

एक जमाना था जब कि लोग व्यापारमें ईमानदारीको सर्वोच्च स्थान देते थे और तभी व्यापारियोंका यह आदर्श एवं अनुकरणीय सिद्धान्त था—'जाय लाख रहे साख' अर्थात् लाखों रुपये भले ही चले जायँ, पर यदि व्यापारीकी साख—बाजारमें प्रतिष्ठा एवं मर्यादा कायम है तो उसका सब कुछ बना है, कुछ नहीं बिगड़ा है। खेद है कि आजके लोगोंकी मनोवृत्ति ठीक इसके विपरीत हो गयी है। धन पासमें होना चाहिये। धन ही सब कुछ है। इज्जत चाहे दो कौड़ीकी भी न हो। नीचे एक ऐसे ही भारतमें व्यापार करनेवाले अंग्रेज व्यापारीकी एक आदर्श एवं अनुकरणीय सच्ची घटनाका उल्लेख किया जाता है, जिसने बाजारमें अपनी साख तथा प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिये बहुत बड़ी आँच सही, पर धन्य है उसकी नीयत, सत्यपरायणता एवं ईमानदारीको। इतने बड़े घाटेमें भी वह नहीं नटा एवं अपने नाम तथा इज्जतको किसी भी प्रकार उसने कलंकित नहीं होने दिया। वह चाहता तो आजकलकी तरह बड़ी ही आसानीसे बेईमानी करता और उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता।

घटना बिल्कुल सत्य है। सम्बन्धित लोगोंके नाम जान-बूझकर नहीं दिये गये हैं।

श्री'ग'ने शेयर बाजारमें नया-नया काम शुरू किया था। उन दिनों अंग्रेज बड़े साहबके पीछे-पीछे शेयर बाजारके दलालोंका झुंड-का-झुंड मँडराया करता था। साहबोंकी दलालीमें दो लाभ होते थे। एक तो यों ही दलालीमें एकके चार बनते थे, दूसरे दलालीके अतिरिक्त 'टिप' मिलनेकी भी सम्भावना रहती थी। किसीपर बड़े साहबकी कृपादृष्टि पड़ जाती थी तो वह मालोमाल हो जाता था।

एक सुविख्यात यूरोपियन कम्पनीके बड़े साहब इन दिनों शेयरबाजारमें लम्बा-चौड़ा काम किया करते थे। श्री 'ग' भी उनके पास पहुँचे। पहले तो वहाँ बड़े-बड़े भारी भरकम दलालोंके सामने उनकी दाल न गली; किंतु बादमें न जाने क्या सोचकर साहेबने काम देना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे व्यापार बढ़ा। लाखों शेयरोंके सौदे भुगत गये। श्री 'ग' की दलाली चमक उठी। उनकी प्रसन्नताका पारावार न रहा।

अचानक एक दिन बड़े साहबका बेहरा उनके घर पहुँचा। रातके दस बज चुके थे। श्री 'ग' ने इस असमयमें बेहरेको देखा तो उनका माथा ठनका। बेहरेसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि 'साहब दो-तीन दिनोंसे न खाता, न पीता है और न सोता ही है। वह पागलकी भाँति अपने कमरेमें चक्कर काटता रहता है।' बेहरेने कहा कि 'साहबने उन्हें बुलाया है।' श्री 'ग' घबराये हुए बेहरेके साथ साहबके बंगलेपर पहुँचे। देखा, साहब सचमुच पागलकी भाँति कमरेके अंदर चक्कर काट रहा है। श्री 'ग' को देखकर उसने दरवाजे बंद कर लिये और दराज खोलकर एक पिस्तौल निकालकर मेजपर रख दी। श्री 'ग'के माथेपर पसीना आ गया।

'मुझे शेयर बाज़ारमें सात लाख रुपयेका घाटा हुआ है।' साहबने भर्राये हुए स्वरमें कहा। 'इतना रुपया मैं एक साथ नहीं दे सकता।'

श्री 'ग'के मुँहसे बोल न फूटा। वे विक्षिप्तकी भाँति बैठ गये। भविष्यके सारे स्वप्न एक ही झटकेमें भङ्ग हो गये।

'यदि तुम मुझपर दबाव डालोगे तो आत्महत्याके अतिरिक्त मेरे सामने अन्य कोई मार्ग न रहेगा। किंतु स्वयं मरनेके पहले मैं तुम्हें भी मार डालूँगा।'

साहब इज्जतदार व्यक्ति था। उसके विरुद्ध मुकदमा करनेसे केवल इसीकी नहीं बल्कि उस विराट् कम्पनीकी ख्याति भी मिट्टीमें मिल जाती, जिसका वह बड़ा साहब था। इसके अतिरिक्त उस साहबकी कम्पनीके बिगड़नेके साथ-साथ उससे अनुबन्धित कई छोटे-छोटे व्यापारियोंके फर्म भी नाहक वैसे ही पिस जाते, जैसे गेहूँके साथ घुन भी पीसा जाता है। यह भी भय था। दूसरे उन साहबका सब लोगोंके प्रति व्यवहार-बर्ताव भी ऐसा मधुर था, लोगोंको उनकी नीयतपर पूरा-पूरा विश्वास था कि इन्हें सचमुच जोर घाटा लगा है। अतः व्यावहारिक दृष्टिपर बात बनाये रखनेके लिये श्री'ग'ने इन सब बातका ध्यान रखकर इतना ही कहा—'ठीक है। आपको गहरा घाटा अवश्य लगा है जिसे आप एकाएक नहीं चुका सकते। फिर भी आपकी नेकनीयती एवं ईमानदारीपर मुझे पूरा-पूरा यकीन है। जब भी आपके

पास इतने सारे रुपये हो जायँ, आप दे दीजियेगा। बाजारवालोंको आपपर पूरा विश्वास है, नहीं भी हो तो कोई बात नहीं।'

'तुम क्या फाल्तू बकता है।' साहबने आत्मसम्मानके साथ कहा। हम इंगलिस्तानवासी व्यापारमें इस तरहका न तो व्यवहार ही करते और न कभी बेईमानी ही करते हैं। मुझपर विश्वास रक्खो—तुम्हारा पाई-पाई चुकाऊँगा। पर एक साथ नहीं, किश्तोंमें हाँ।' अन्तमें बीस हजार रुपयेकी मासिक किश्तपर मामला तय हुआ। किंतु श्री'ग' रुपयेको डूबा हुआ समझकर निराश हो चुके थे। उनकी फर्मवाले भी उनकी जान खा रहे थे। भविष्य पूर्णतः अन्धकारमय प्रतीत हो रहा था।

आशा न थी और साहब चाहते तो बड़ी आसानीसे घाटेका रुपया बिना चुकाये ही हजम कर सकते थे। लोगोंको उनकी ईमानदारीपर जरा-सा भी संदेह न रहता और वे लोगोंकी दृष्टिमें वैसे ही बने रहते। पर वे एक ईमानदार आदर्श व्यापारी थे। फिर भी श्री'ग' साहबके आदेशके अनुसार पहली तारीखको उनके आफिसमें पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि उनका चेक पहलेसे तैयार है। साहबने बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप चेक उनकी ओर बढ़ा दिया।

यह क्रम चलता रहा। प्रति मास पहली तारीखको श्री'ग' साहबके आफिसमें जाते और अपने चेकको मेजपर रक्खा हुआ पाते। एक वर्ष बीत गया। एक दिन सदाकी भाँति पहली तारीखको श्री'ग' अपना चेक लेनेके लिये पहुँचे तो साहबने कुछ चेक देकर हिचकिचाते हुए कहा—

'तुमसे एक बात कहनी है।'

'कहिये।' श्री 'ग' ने आग्रहके स्वरमें अनुरोध किया।

'मैं बूढ़ा हो गया हूँ। ट्रामसे आफिस आनेमें बड़ा कष्ट होता है। यदि तुम एक महीनेकी किश्त छोड़ दो तो मैं मोटर खरीद लूँ।'

श्री 'ग'की आँखोंमें आँसू आ गये। बातके धनी साहबने अपना घाटा चुकानेके लिये मोटरतक बेच डाली थी। घरके सारे खर्चे घटा दिये थे। जिस व्यक्तिके एक इशारेपर लाखोंके वारे-न्यारे हो जाते थे, उसकी यह हालत।

वह समय भी चला गया। साहबने अपना सारा घाटा चुका दिया। इसके बाद अपनी कम्पनीसे अवकाश ग्रहण करते समय उनकी आँखोंमें विजयकी जो मुस्कराहट देखी गयी, वह लाखों व्यक्तियोंके हृदयमें एक गहरी रेखा अङ्कित कर गयी। आज भी श्री 'ग' 'बड़े साहब' की बातोंको याद करके रोमाञ्चित हो उठते हैं।

—वल्लभदास बिन्नानी 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

(२)

ऊँची नैतिकता

दिनाङ्क १। ७। ६६ का दिन था। मुझे वेतन लेना था। अतः रसीदी टिकट प्राप्त करने हेतु मैं कार्यालयसे गोलागंज डाकघर पहुँचा। डाकबाबू कार्यरत थे। भीड़ अधिक थी। इसी बीचमें एक वृद्ध सज्जन हाँफते हुए आये और डाकबाबूसे बोले—'बाबूजी! आपने मुझे एक सौका नोट अधिक दे दिया है।' यह कहकर उन्होंने वह सौका नोट उनके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। मैं और उपस्थित सभी व्यक्ति यह सचाई देखकर दंग रह गये। डाकबाबूने पुनः धनका वितरण-विवरण देखा और बोले, 'जी हाँ, भूलसे सचमुच एक नोट सौका मैं अधिक दे गया था।' उन वृद्ध सज्जनने वह सौका नोट प्रसन्नमुद्रासे वापस कर दिया और तत्क्षण डाकघरसे चले गये। उनके जानेके बाद एक व्यक्ति बोला, 'धन्य है ऐसे ईमानदारको जो यों सौ रुपये वापस कर गये हैं।' डाकबाबू बोले, 'ये सज्जन हमारे डाक-विभागके ही रिटायर्ड कर्मचारी हैं। आज पेन्शन लेने आये थे।' मेरे नेत्र यह घटना देखकर हर्षसे अश्रुप्लावित थे और मुझे बीस वर्ष पूर्व कहे हुए अपने स्वर्गीय पिताके शब्द याद आये, जब उन्होंने किसी प्रसङ्गवश मुझे बताया था कि 'डाक-विभागके कर्मचारी बड़े ईमानदार होते हैं।'

—कृष्णमोहन शुक्ल एम्० ए०

(३)

हृदय-परिवर्तनका आदर्श उदाहरण

अक्सर यह कहा जाता है कि पुलिस-विभागमें भ्रष्टाचार, बेईमानी और रिश्वतखोरीका बोलबाला है।

किन्हीं अंशोंमें यह सत्य भी हो सकता है, पर इस विभागमें भी हमें कई ऐसे सज्जन पुरुषोंके दर्शन होते हैं जो ईमानदारी तथा कर्तव्यपरायणतापर डटे रहकर अपना कार्य सुचारुरूपसे चलाते हैं।

मेरे एक मित्र हैं जो पुलिस विभागमें एक उच्च पदपर कार्य कर रहे हैं। वे कर्तव्यपरायण सदाचारनिष्ठ एवं ईमानदार व्यक्ति हैं। पूरे आस्तिक हैं। नित्य स्नान-संध्या किये बिना भोजन ग्रहण नहीं करते। उनके कथनानुसार उनका नाम गुप्त ही रक्खा जा रहा है।

एक दिन मैं अपनी आदतके अनुसार उनसे पूछ बैठा—

'भाई साहेब ! आप इस विभागमें रहते हुए भी इतने सज्जन, ईमानदार और सरल-हृदय कैसे हैं ? नित्य आपको क्रूर-से-क्रूर अपराधियोंका सामना करना पड़ता है। अनेक बार बाहर दौरेपर जाना पड़ता है फिर भी आप इस अनैतिक एवं भ्रष्टाचारी युगमें किस प्रकार सच्चे अर्थोंमें मानवता धारण किये हुए हैं ?' वे बोले—'भाई व्यासजी ! क्या बताऊँ, जीवनमें एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण मैं नास्तिकसे आस्तिक—दानवसे मानव बना।'

मैं बोला—'यदि एतराज नहीं हो तो कृपया मुझे अपने जीवनकी वह महत्त्वपूर्ण घटना सुनाइये।'

वे बोले—''लगभग दस वर्ष पूर्वकी घटना है। उन दिनों मैं कोटा जिलेके एक कस्बेमें थानेदारके पदपर कार्य कर रहा था। यह तो आप जानते ही हैं कि थानेदारको क्या मिलता है केवल १५०) रुपये मासिक। फिर ऊपरसे पुलिस अफसरोंका प्रतिदिनका आना-जाना। घरका कौटुम्बिक खर्च अलग। इतनेसे रुपयोंसे क्या होता। मैं रिश्वत लेता था।

अपराधियोंसे घूस खाकर उनके अपराधोंपर पर्दा डालता था।

एक दिनकी बात है—गाँवके दो पड़ोसियोंके बीच एक दीवारको लेकर झगड़ा हो गया। झगड़ेने लड़ाईका उग्र रूप धारण कर लिया। एक व्यक्तिने लाठीसे दूसरे व्यक्तिको इतना मारा कि उसने वहीं दम तोड़ दिया। पुलिसमें सूचना पहुँची। मैं दो सिपाहियोंको लेकर घटनास्थल-पर जाँचके हेतु पहुँचा। वहाँ देखा कि मृत व्यक्तिके आस-पास काफी भीड़ लगी हुई है। हत्यारेको कई व्यक्तियोंने पकड़कर बाँध रक्खा है। मृत व्यक्तिकी पत्नी एवं बच्चे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं। उसका भाई बदला लेनेकी धमकी दे रहा है। उसकी आँखोंमें खून उतर आया था। लोगोंने उसे रोक रक्खा था। बड़ा रोमाञ्चकारी दृश्य था।

मैंने अपराधीको हिरासतमें ले लिया। आवश्यक कार्यवाही करने हेतु थानेपर लौट आया।

रात्रिको अपराधीके सगे-सम्बन्धी मेरे पास आये और प्रार्थना करने लगे—'थानेदार साहब ! अपराधीसे गल्ती तो हो गयी। मरा हुआ तो अब जी नहीं सकता। अब तो इस गरीबको आप किसी तरहसे बचाओ। यदि इसे फाँसी हो जायगी तो इसका घर बरबाद हो जायगा। आप ये दो सौ रुपये लीजिये और इसे किसी तरहसे बचाइये।'

लोभने आँखोंपर पर्दा डाल दिया। मैंने रुपये ले लिये। अपनी रिपोर्टमें मैंने लिखा—'जिस व्यक्तिका कत्ल हुआ है उसे चार पाँच व्यक्ति लाठियोंसे मार रहे थे, ऐसा गाँव-वालोंसे सुना गया। इसलिये मैं कह नहीं सकता कि किसके हाथसे वह मरा।'

मैंने दो-तीन झूठे गवाह भी ऐसे तैयार कर लिये जो अपराधीको बचानेमें सहायता दे सकते थे। इस प्रकार रिश्वत लेकर मैंने अपना कार्य पूरा कर दिया।

अब ईश्वरकी विचित्र लीला देखिये !

दूसरे दिन मेरा छोटा पुत्र, जो पाँच वर्षका था, अचानक बीमार हो गया। उसे कै-दस्त हुए और १०५ डिग्री बुखार चढ़ गया। डाक्टरको बुलाया वह भी उसे ठीक नहीं कर सका।

मुझे आश्चर्य हुआ कि कल तो यह ठीक था, आज इसे न जाने क्या हो गया। रात्रिभर मैं बच्चेके पास बैठा जागता रहा। उसकी दशा खराब होती जा रही थी। मैं और मेरी पत्नी चिन्तामें डूबे हुए थे। पत्नी आस्तिक विचारोंकी थी, पूजा-पाठमें विश्वास करती थी। उसने कहा—'यह सब आपके पापोंका फल है। रिश्वतका पैसा पापका पैसा है। ईश्वर उसका दण्ड इस प्रकार देता है। पापके दो सौ रुपये लेनेके कारण ही यह बीमार पड़ा है ! मुझे विश्वास है यदि आप दो सौ रुपये वापिस लौटा देंगे तो शायद बच्चा ठीक हो जाय।'

वैसे मैं नास्तिक विचारोंका था, पर इस संकटने आस्तिक एवं धर्मपरायण-सा बना दिया।

मैंने ईश्वरसे प्रार्थना की—'हे प्रभो ! यदि बच्चा सुबहतक ठीक हो जायगा तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवनमें कभी रिश्वतका पैसा नहीं लूँगा। ये दो सौ रुपये भी लौटा दूँगा और धर्मनिष्ठ होकर अपना कर्तव्य पालन करूँगा।'

ईश्वरका चमत्कार देखिये। सुबह चार बजे ही बच्चेकी हालतमें सुधार हो गया। सुबह होते-होते वह स्वस्थ हो

गया। मैंने दो सौ रुपये अपराधीके सम्बन्धीको वापिस लौटा दिये। पुरानी रिपोर्ट फाड़ डाली और नयी रिपोर्ट घटनाके अनुसार सही लिखी। न्यायालयसे अपराधीको आजन्म कारावासका दण्ड मिला। उसे अपनी करनीका फल मिलना ही था। उस दिनसे मैं पूर्ण आस्तिक हो गया। ईमानदारीके साथ अपना कर्तव्य पालन करने लगा। ईश्वरकी कृपासे दो वर्ष पश्चात् ही मेरी पदोन्नति हो गयी। आज मेरे दो बच्चे कालेजमें उच्च शिक्षा पा रहे हैं। घरमें सुख-शान्ति है। मैंने अपने जीवनमें यही देखा कि ईमानदारीका पैसा ही फलता-फूलता है।''

वास्तवमें हृदय-परिवर्तनकी यह एक पठनीय घटना है।

—श्याममनोहर व्यास एम्० एस्-सी०

(४)

बदला चुकाया जाता है

घटना लगभग नब्बे वर्ष पूर्वकी है पर सर्वथा सत्य है। केवल पात्रोंके नाम घटनाका क्रम बनाये रखनेके लिये रक्खे गये हैं।

धनीराम नामक व्यक्ति नागौर जिलेके एक गाँवमें रहता था। नाम तो धनीराम था परंतु प्रारब्धके कारण उसके माता-पिताकी मृत्यु बचपनमें ही हो गयी थी। जो कुछ पैसा-वैसा था, वह भाई-बन्धुओं तथा कुटुम्बियोंने बाँट लिया। येनकेन प्रकारेण बालपन व्यतीत कर धनीराम युवा हुआ। महाजन था। जवान था। कार्य करनेकी लगन थी, अतः अथक परिश्रम कर वह कुछ अपने पैरोंपर खड़ा हुआ। वर्ष बीतते गये, परंतु दरिद्रताके कारण विवाह-सम्बन्ध नहीं हो सका। कन्याविक्रयका युग था। अतः इधर-उधरसे उधार लेकर धनीरामने एक कन्याके पिताको राजी कर विवाह कर लिया। विवाहके समय बालिकाकी अवस्था १२ वर्षकी थी।

वर्ष भरके अंदर-अंदर ही लोगोंने अपने रुपयोंके लिये धनीरामको तंग करना प्रारम्भ कर दिया। धनीरामने सोचा। अभी पत्नीकी अवस्था छोटी है एवं इधर लोग पैसेके लिये तंग करते हैं; अतः क्यों नहीं विदेश जाकर धन कमाया जाय ताकि जिंदगी आरामसे कटे। बात जँच गयी एवं धनीराम घरसे विदेशके लिये चल पड़ा।

महाजन वही है जो व्यापारमें खुद कमाता है एवं दूसरेको भी लाभ पहुँचाता है। धनीराममें कार्य करनेकी लगन थी, अतः उसी लगनके कारण उसने तीन-चार वर्षमें अच्छा धन कमा लिया। अब उसे घरकी याद सताने लगी। सोचा एक बार घर चला जाय।

धनीराम अपने कमाये हुए धनको लेकर यात्रा करता हुआ फुलेरा पहुँचा। फुलेरासे उसने अच्छी देखकर एक घोड़ी खरीदी एवं शेष रास्ता घोड़ीद्वारा तय करनेका निश्चय किया। उस समयतक रेल या मोटरका इतना प्रचार नहीं था। रात्रिको किसी गाँवमें ठहर जाता एवं प्रातःकाल फिर यात्राके लिये आगे बढ़ जाता। चलते-चलते वह नागौर जिलेकी परबतसर नामक तहसीलके पास पहुँचा। उस दिन रात्रि-विश्राम उसने एक ठाकुरके रावलेमें किया।

ठाकुर रणजीतसिंह क्षत्रिय थे, परंतु उनका धंधा (व्यापार) बड़ा अवाञ्छनीय था। भूले-भटके यात्रियोंको लूटना ही उनका काम-धंधा था। परमात्माने घर बैठे गङ्गा भेज दी। ठाकुरसाहब बहुत प्रसन्न हुए एव रात्रिको मरदाना बैठकमें धनीरामको सुलानेकी व्यवस्था कर दी। ठाकुरसाहब जब अंदर जनानामें जाने लगे तो द्वारपालको सचेत करते गये कि 'पंछी पिंजरेसे उड़ न जाय।' धनीरामको उस आवाजकी भनक पड़ गयी। उसे रात्रिको नींद नहीं आयी। करवट बदलते हुए रात बितायी। प्रातःकाल द्वारपाल ज्यों ही दरवाजा खोला एवं लोटा ले हाथ-मुँह धोने बाहर आया तो धनीरामने इसे अच्छा अवसर समझा, धीरेसे घोड़ीपर सवार हो रावलेके बाहर हो गया। धनीरामने सोचा 'परमात्माने रक्षा की। अब तो गाँव तथा घर नजदीक है। राततक घर पहुँच जाऊँगा।'

'अपनी चिंती होय नहीं, भावी होय सो होय।'

ठाकुरसाहबकी जब आँखें खुलीं तो वे झट बाहर आये। बाहर आनेपर देखा कि चिड़िया पिंजरेसे उड़ गयी है। द्वारपालपर लाल-पीले हुए। ठाकुरसाहबकी जोर-जोरकी आवाज सुनकर ठकुराइन ऊपर मेड़ीपर चढ़ी एवं उसने बताया कि सेठ अभी तो आधा मील दूर ही गया है। ठाकुरसाहबने झटसे अपने घोड़ेपर जीन कसी एवं उसका पीछा किया।

प्रातःकालकी मीठी-मीठी हवा चल रही थी। घोड़ा सरपट भगा जा रहा था। थोड़ी ही देरमें उसे घोड़ी दिखायी देने लगी। धनीरामने ज्यों ही मुड़कर पीछे देखा उसने ठाकुरको सरपट अपना पीछा करता हुआ पाया। उसने घोड़ीको तीन-चार चाबुक लगाये पर घोड़ी घोड़ेकी आवाजपर वहीं रुक गयी। धनीरामने बहुत कोशिश की, पर घोड़ी टस-से-मस नहीं हुई। इतनी ही देरमें ठाकुरसाहबकी विकराल मूर्ति उसके सामने आ पहुँची।

ठाकुरके अभिप्रायको समझकर धनीरामने ठाकुरसाहबसे

प्राणोंकी भीख माँगी। अपनी पत्नीकी अवस्थाका वर्णन किया, परंतु पापी ठाकुरके हृदयमें दया कहाँ थी। ठाकुरने तलवारसे सेठका मस्तक धड़से अलग कर दिया और वहीं खड्डा खोदकर लाशको गाड़ दिया। जो कुछ सोना-चाँदी जवाहरात नगद थे, सब लेकर घोड़ीके साथ प्रसन्न-मुद्रामें ठाकुर घर पहुँचे। ठकुराइनने ठाकुरका खूब स्वागत किया। समय व्यतीत होता गया।

उस घटनाके एक-दो मास बाद घोड़ी मर गयी एवं दस मास बाद ठाकुरके यहाँ एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। ठाकुरके घरमें पुत्ररत्न उत्पन्न होनेकी खुशियाँ मनायी जाने लगीं। पुत्रका नाम कुलदीपसिंह रक्खा गया। पुत्र दिनोंदिन चन्द्रमाकी कलाके समान बढ़ता गया।

ठाकुरसाहब बड़े सुखसे दिन व्यतीत कर रहे थे। पुत्रकी कमी थी, वह भी परमात्माने पूरी कर दी। पुत्र दिनोंदिन बड़ा होने लगा। पढ़ाई आदिकी उचित व्यवस्था घरपर कर दी गयी।

कुँवरके जवान होते ही विवाहकी दौड़-धूप होने लगी। टीका आदिका रिवाज जोरोंपर था। ठिकानेके साथ-साथ ही गुणसम्पन्न कुँवर था। अतः विवाह आदिका कार्य बड़ी धूम-धामसे सम्पन्न हो गया। दुलहिनके रूप तथा गुणपर ठकुराइन फूली नहीं समा रही थी। जो कोई भी आता, उससे ठकुराइन अपनी पुत्रवधूके गुण गाया करती थी।

ईश्वरके घर न्याय होता है, फेरेके दिनसे ही कुँवर कुलदीपसिंहको बुखार आने लगा। लोगोंने सोचा यात्रा आदिके कारण बुखार आ गया है। इलाज, झाड़-फूँक आदि भी किया गया, परंतु फल आशाके विपरीत हुआ। इलाज ज्यों-ज्यों किया गया, रोग बढ़ता ही गया। तीन-चार मासमें फूल-सी सुकुमार देह सूखकर काँटा हो गयी। सभी दुखी थे। सुखी परिवारपर ईश्वरका प्रकोप हो गया था। वैद्य, डाक्टर, ओझा आदिका खूब इलाज करवाया गया पर कोई लाभ दृष्टिगत नहीं हुआ।

गरमीके दिन थे। रोगीको प्रातःकाल कुछ नींद आयी। ठाकुरसाहब अपने लाडले पुत्रके सिरहाने कुर्सीपर बैठे परमात्मासे पुत्रकी दीर्घायुके लिये प्रार्थना कर रहे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि पुत्रके मुखपर पड़ी। अठारह वर्षकी घटना आँखोंके सामने सजीव हो उठी। श्रीधनीराम सेठका अन्तिम कालका चेहरा कुँवरके चेहरेसे पूरा-पूरा मिल रहा था। सेठके अन्तिम समयके शब्द ज्यों-के-त्यों ठाकुरको सुनायी देने लगे। ठाकुरने भयसे आँखें मींच लीं। कुँवरको खाँसी आयी, आँखें खुल गयीं। खाँसी इतने जोरकी आयी कि घरके सभी प्राणी उसी कमरेमें एकत्रित हो गये। खाँसी बंद नहीं हो रही थी। कुँवर छटपटा रहा था। अन्तिम काल समीप था। घरके सभी लोग पलंगके चारों ओर खड़े आँसू बहा रहे थे। अकस्मात् ठाकुर साहबके मुँहसे निकल पड़ा। यह किस जन्मका बदला चुकाया जा रहा है भगवन्!

कुँवरने एकटक पिताकी ओर देखा और कहा 'मैं धनीराम सेठ हूँ, अपना बदला चुकाने आया था। बदला पूरा हुआ।' ठाकुरको काटो तो खून नहीं। ठकुराइन साहिबा आगे बढ़ी। पूछा, 'मेरा क्या कसूर था जिस कारण तुमने मेरे पेटमें नौ मास बिताये?' कुँवरने जवाब दिया—'आप यदि ऊपर चढ़कर मुझे नहीं बतातीं तो मैं बच जाता।' ठकुराइन लज्जासे पीछे हट गयी। पुत्रवधू अपने आपको नहीं रोक सकी, कुलकी लज्जाको तिलाञ्जलि देकर बोली—'मेरा क्या अपराध था, प्राणनाथ!' उत्तर था 'तुम घोड़ी थी, यदि घोड़ेके मिलनेकी लालसा तुम्हारे मनमें न होती तो ठाकुर मुझे नहीं पकड़ सकता।' वार्तालाप ज्यों ही समाप्त हुआ कुँवरने अपनी आँखें सदाके लिये बंद कर लीं। लोगोंके मुँहसे धीरेसे दबी-सी आवाज आ रही थी—पापका बदला चुकाया जाता है! —शिवचन्द्र बहुरा

(५)

निःस्पृह गरीब दम्पतिकी आदर्श सेवापरायणता

यह एक सत्य घटना है, कल्याण-प्रेमियोंके अनुकरणार्थ नीचे लिखित है।

दिनाङ्क २७।४।६६ दिन बुधवारकी बात है। छत्तीसगढ़के दुर्ग जिलेके अन्तर्गत खर्रा नामका ग्राम है। वहाँके नवयुवक व्यवसायी सेठ भीखमचन्द जैन उक्त दिनाङ्कको ६ बजे शामको अपने मोटर-साइकलसे अहिवारा नामक ग्रामसे अपने ग्राम खर्राकी ओर रवाना हुए। बीचमें एक निर्जन स्थानमें उनकी गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गयी और उक्त युवक गाड़ीसे गिर पड़े तथा रातभर वहीं कराहते हुए पड़े रहे। दूसरे दिन करीब ११ बजे दिनको कुसमी ग्रामके निवासी एक मजदूर-दम्पति (खेदूराम—बिसरीनबाई) मजदूरी करके भूखे-प्यासे अपने गाँवकी ओर लौट रहे थे। रास्तेमें अकस्मात् उनकी दृष्टि मरणासन्न तड़पते हुए युवक भीखमचन्दकी ओर पड़ गयी। निर्धन मजदूर-दम्पतिकी मानवता जाग उठी। उन लोगोंने

तत्क्षण आधा मील दूरसे पानी लाकर कराहते हुए व्यापारी युवकके मुँहमें डाला और उसे हवा करने लगे। तदनन्तर दोनों पति-पत्नी उस घायल युवकको उठाकर किसी तरह छः मील दूर एक गाँवमें ले गये। वह व्यवसायी युवक, जो मृत्युके कगारपर पहुँच चुका था, करीब ५ तोला स्वर्णाभूषण पहने था तथा २००) कीमतकी घड़ी बाँधे था।

यह क्षेत्र इस वर्ष भयङ्कर अकालग्रसित है। लोग दाने-दानेको तरस रहे हैं। इसके बावजूद भी निर्धन मजदूर-दम्पतिने उस धनपर कोई लालच नहीं किया तथा कष्ट झेलते हुए उस युवकके प्राण बचाये। अस्पतालमें चिकित्सा करानेपर करीब बीस-पचीस दिनोंके बाद रोगी युवकको स्वास्थ्य-लाभ हुआ।

इस तरह निःस्पृह सेवा-धर्म माननेवाले मजदूर-दम्पतिका कार्य प्रशंसनीय ही नहीं, अपितु अनुकरणीय है।

—माखनलाल चौबे, शिक्षक

(६)

आदर्श बालक

झम-झमकर वर्षा हो रही थी। जूनका महीना था। मैं इस डरावनी काली रातमें बिजलीके कौंधनेपर गीत-सा अनुभव करता था। मैं छोटा नागपुरमें वन-पर्वतसे घिरे एक गाँवमें रह रहा था। मेरे मकानसे हटकर कुछ दूरीपर उराँवोंका मकान था। यहाँसे बाजारकी दूरी छः मील थी। मेरा विद्यालय मेरे मकानसे तीन मीलकी दूरीपर था। एक रातमें जब तूफान वर्षासे सबके शरीर थरथरा एवं ठिठुर रहे थे, मुझे जोरोंका ज्वर चढ़ा हुआ था। मैं बहुत ही भयभीत हो गया था। पीड़ा काले बादलोंकी तरह मेरे शरीर-मनमें उमड़-घुमड़ रही थी। परमपिता परमेश्वरके स्मरणमें ही लगा हुआ था।

मनमें रह-रहकर यह बात उभर उठती थी कि आज मेरे माँ-बाप भी मुझसे दूर ही हैं, स्कूल भी अभी नहीं खुला है, न तो कोई पास आता है। यह सब बात सोच-सोचकर मैं भगवान्‌को कोस ही रहा था कि हे परमपिता ! किसीको भेज दो। इतनेमें किसीने मेरे दरवाजेकी कुंडी खटखटायी। मैंने पूछा—'आप कौन हैं?' उत्तर मिला—'मैं हूँ रामदुलारे पाल गरेड़ी बालक। मैं आज वर्षाके कारण घर न जा सका, आपके कराहनेकी आवाज सुनकर मैंने कुंडी खटखटायी है।' थोड़ी ही देरमें देखता हूँ कि वह अपरिचित बालक डाक्टरको साथ लिये आ रहा है। मेरी चिकित्सा डाक्टरने की। उस बालकने मेरी भरपूर सेवा की। वह बालक देखनेमें बड़ा ही दिव्य मालूम पड़ रहा था। मैं जब कुछ दिनोंमें उस अपरिचित बालककी सेवासे अच्छा हुआ तो मैंने उससे पूछा—'बालक ! तुम्हारा परिचय ?' उसने कहा—'बाबू ! मैं बगलकी ही जोबरईया बस्तीका रहनेवाला हूँ।' मैं धीरे-धीरे उठा कि उसकी सेवाका कुछ पुरस्कार तो दूँ, ज्यों ही कमरेसे लौटता हूँ, देखता हूँ कि वहाँसे बालक दूर जा चुका है। मुझे उस दिनसे भगवान्‌पर बड़ी आस्था जम गयी कि वे अनाथोंके नाथ हैं। संसारके पालक हैं। आज इस घटनाको हुए कई वर्ष गुजर चुके, तो भी इसकी स्मृति ताजी है।

—देवव्रत एम्० ए०

(७)

अनुष्ठानका आश्चर्य प्रभाव

करीब १२-१३ वर्षकी अवस्थासे मुझे एक बुरी कुटेव हो गयी थी—इस आदतके फलस्वरूप कई प्रकारके अवाञ्छनीय रोग मेरे शरीरमें उत्पन्न हो गये। इतनेपर मैं उस कुटेवको न छोड़ सका। मैंने अपने रोगोंकी बात लज्जावश किसीसे कही नहीं और न उसका कोई इलाज ही किया। मेरे विवाहकी बात चली—उस समय भी लज्जावश अपनी स्थिति किसीसे नहीं बतलायी परंतु यथासाध्य काफी कोशिश की जिससे मेरा विवाह न हो। पर मेरी एक भी नहीं चली। मैं भीतर-ही-भीतर रो रहा था। मैं भगवान्‌की पुकार आन्तरिक हृदयसे करता रहा। कैसे मेरी नौका पार लगेगी। आखिर भगवान्‌पर विश्वास करके मैंने विवाह करा लिया। पत्नी आयी। पर मैं खुद भीतर बहुत ही कुढ़ रहा था। दुर्भाग्यवश मेरी पत्नीको भी प्रदर-की बड़ी बीमारी थी। हम दोनों ही संतानके पक्षसे निराश हो चुके थे। हम दोनों अपने आपको दोषी बताते। दोनों एक दूसरेपर संतान न होनेका दोष नहीं देते। हम दोनोंको एक और चिन्ता बनी रही कि यदि दो-तीन वर्षके अंदर संतान नहीं होगी तो लोग हमलोगोंको बुरे रोगोंसे ग्रस्त और बाँझ समझेंगे।

संयोगवश एक बार 'कल्याण'के विशेषाङ्कमें षष्ठीदेवी-स्तोत्र तथा रामरक्षा-स्तोत्रकी महिमा पढ़नेका अवसर मिला। डूबतेको तिनकेका सहारा मिला। षष्ठी-स्तोत्र तथा रामरक्षा-स्तोत्रकी निम्न पंक्तियोंके पढ़नेसे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यदि नियमित पाठ किया जाय तो निश्चय ही संतान होगी। षष्ठीदेवीके स्तोत्रमें है—

'षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ॥

और रामरक्षा स्तोत्रमें है—

एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥

पूर्ण विश्वासके साथ मैंने दोनों स्तोत्रोंका पाठ शुरू किया। जिस समय स्तोत्र पाठ शुरू किया उस समय हम दोनों पति-पत्नीमें पूर्ववत् रोग वर्तमान था। परंतु मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र तथा भगवती श्रीषष्ठी माताके प्रति पूर्ण विश्वास कर हमलोगोंने पाठ करना जारी रक्खा। दुःखमें भगवान् ही सहायता करते हैं।

स्तोत्रोंका पाठ करते केवल छः-सात मास बीते होंगे कि मेरी पत्नीके गर्भके लक्षण दिखलायी दिये। भगवान् श्रीराघवेन्द्र तथा श्रीषष्ठीमाताकी असीम अनुकम्पासे हमें संतानका मुख देखनेका सुअवसर मिला, जिसके लिये हम दोनों सर्वथा निराश हो चुके थे।

हम दोनोंको आज भी बड़ा आश्चर्य लगता है कि हम दोनोंमें इस प्रकारके भीषण रोगोंकी मौजूदगीमें कैसे गर्भ-धारण तथा संतानका जन्म हुआ। प्रभुकी लीला विचित्र है। यह भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा जगज्जननी माताकी कृपाके सिवा और कुछ नहीं। उनके चरणोंमें बारंबार प्रणाम है।

अन्तमें मेरा निवेदन है कि यदि कोई महानुभाव किसी कारणवश संतान न होनेसे निराश हों, वे श्रीभगवान् राम तथा षष्ठीमातापर पूर्ण विश्वास रखते हुए रामरक्षास्तोत्र तथा षष्ठीस्तोत्रका पाठ नियमित रूपसे अवश्य आरम्भ कर दें—मुझे पूर्ण विश्वास है प्रभुकी कृपासे उन्हें निश्चय संतान होगी।*

'रामरक्षास्तोत्र' 'कल्याण'के ३९ वें वर्षके विशेषाङ्कमें प्रकाशित हो चुका है। अतः यहाँ केवल षष्ठीदेवीस्तोत्र दे रहा हूँ—

* ऐसे और लोगोंके भी अनुभव हैं परंतु यदि प्रतिबन्धक प्रबल होता है तो थोड़े अनुष्ठानसे नया प्रारब्ध नहीं बनता। अतएव लगातार अनुष्ठान करते रहना चाहिये। कदाचित् फल न भी हो तो हानि तो है ही नहीं। —सम्पादक

श्रीषष्ठीदेवीस्तोत्रम्

ध्यानम्—षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाप्य च सुप्रभाम्।
सुपुत्रदां च शुभगां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रक्तभूषणभूषिताम्।
पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥

मन्त्र—ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा। (यथासाध्य जप करें)

स्तोत्रम्

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम्।
आज्ञाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद ॥

प्रियव्रत उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः।
शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः।
सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
शक्तिषष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः।
मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
सारायै शारदायै च परायै सर्वकारिण्यै।
बालाधिष्ठात्र्यै देव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्।
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु।
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा।
हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि।
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
भूमिं देहि प्रजां देहि विद्यां देहि सुपूजिते।
कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥
इति देवीं च संस्तुत्य लेभे पुत्रं प्रियव्रतः।
यशस्विनं च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥
षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ॥
वर्षमेकं च या भक्त्या संस्तुत्येदं शृणोति च।
सर्वपापविनिर्मुक्ता महावन्ध्या प्रसूयते ॥
वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्।
सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥
काकवन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत्।
वर्षं श्रुत्वा लभेत् पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥

१—पाठकर्ता पुरुष हो तो 'प्रियां' कहे और स्त्री हो तो 'प्रियं' कहे।

रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत्।
मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः॥

प्रणाम-मन्त्र

जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि।
प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठि देवते॥

—एक अनुभवप्राप्त

(८)

एक मुर्गीकी हत्याका परिणाम! तीन पुत्रोंका संहार!!

शेखूपुरा (पाकिस्तान) का समाचार है कि एक पाकिस्तानी सज्जन अपने घरमें एक मुर्गी लाये और अपने दो बालकोंके सामने छतपर उसे काटना प्रारम्भ किया। बालकोंकी आयु सात और चार वर्षकी थी। ये दोनों एक ओर खड़े देख रहे थे। बेचारी मुर्गी चूँ-चूँ कर रही थी। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है। कभी वे हँसते और कभी उदास हो जाते। अन्ततः जब मुर्गी लहूलुहान हो गयी तो उसने दम तोड़ दिया। इसपर उनका पिता कहीं नीचे चला गया।

इतनेमें दोनों बालकोंको क्या सूझी कि उन्होंने भी वही नाटक दोहरानेकी सोची। बड़े लड़केने छोटे भाईको धरती-पर लिटा दिया और जिस प्रकार उसके पिताने मुर्गीको दबा रक्खा था, उसी प्रकार बड़े भाईने छोटे भाईको दबाये रक्खा और साथ ही उसकी गर्दनपर छुरी चलाना प्रारम्भ कर दिया। जब उसकी गर्दन कटने लगी तो उसने चीखना-चिल्लाना आरम्भ कर दिया।

नीचे किसी और कमरेमें उनकी माता अपने चार मासके नन्हे शिशुको नहला रही थी। दूसरे बालककी चीखें सुनकर वह बेचारी ऊपर भागी। जब ऊपर आकर उसने देखा तो उसके होश उड़ गये; क्योंकि छोटे बच्चेकी गर्दन शरीरसे अलग हो चुकी थी।

इतनेमें बड़ेको यह अनुभव हुआ कि उसने कोई अन्धेर कर दिया है। जब उसने देखा कि उसका छोटा भाई तो मर चुका है तो उसने भयके मारे छतसे छलाँग लगा दी। माँ बेचारी पागलोंकी भाँति कभी एक बालकको देखती और कभी दूसरे-को। जब बड़ा लड़का छतसे गिरा तो उसने जोरसे एक चीख मारी और दम तोड़ दिया। इस प्रकार चार वर्षीय बालक खूनमें लथपथ पड़ा दम तोड़ चुका था और बड़ा छतसे गिरनेसे समाप्त हो गया!

बेचारी माँ पागलोंकी भाँति फिरती रही, परंतु उसे क्या पता था कि उसके दुर्भाग्यका अभी अन्त नहीं हुआ। पाँच-दस मिनट वह इधर-उधर भटकनेके पश्चात् अचेत हो गयी। इतनेमें माँको होश आया और उसको स्मरण हुआ कि उसका चार मासका नन्हा शिशु पानीमें है। वह अधीरतासे नीचे भागती गयी, परंतु वह जाकर देखती है कि वह चार मासका नन्हा शिशु भी पानीमें गोते खाकर दम तोड़ चुका है। इस प्रकार दस मिनटके भीतर बदकिस्मत माँको अपने हृदयके तीनों टुकड़ोंसे हाथ धोना पड़ा!

जैसा कार्य माँ-बाप करते हैं, वैसा ही संतान। इसलिये बापने मुर्गी मारी तो बेटेने अपने भाईको मारा और स्वयं भी मरा। हिंसाका फल बहुत बुरा है। क्या मांसलोलुप और हिंसकलोग इस घटनासे शिक्षा ग्रहण करेंगे? (अहिंसा)

—वल्लभदास बिन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

(९)

किसकी सहायता

कुछ ही दिन पहलेकी बात है। छुट्टियोंके दिन थे। मैं अपने एक मित्रके विवाहमें उसके गाँव गया था। वह गाँव मऊ (आजमगढ़) के पास पड़ता है।

लौटते समय मैं गाड़ी आनेसे कुछ पूर्व ही मऊ स्टेशनपर आ गया था। शामका समय था। मैं एक बेंचपर बैठ गया और एक पुस्तकके पन्ने उलटने लगा। गाड़ी शायद कुछ लेट थी। अभी मैं पुस्तकके पन्ने उलट ही रहा था कि एक दो सालके लगभगका बच्चा, मेरा पैंट खींचने लगा। लड़केकी मासूम आँखोंने मुझे पुस्तक बंद करनेको बाध्य कर दिया और बच्चेको गोदमें उठाकर मैं प्लेटफार्मपर टहलने लगा। कुछ ही समयमें गाड़ी आती हुई दिखायी दी। मैंने एक दूसरी बेंचपर बैठे दम्पतिसे पूछा—पर उन्होंने कहा 'यह बच्चा हमारा नहीं है।' यह सुनते ही मैं दंग रह गया। अभीतक मैं बच्चेको उन्हींका समझ रहा था! गाड़ी आ गयी। मैं उसको गोदमें लिये प्लेटफार्मपर इधर-उधर उसके माता-पिताको ढूँढने लगा। गाड़ीमें लोग उतर-चढ़ रहे थे। पर मैं बच्चेको अकेला छोड़कर भी न जा सकता था; क्योंकि छोड़ते समय उसकी मासूम शक्ल मेरे सामने आ जाती थी। अन्तमें मैंने रेलवे कर्मचारियोंका ध्यान लड़केकी ओर आकर्षित करना चाहा किंतु उन्होंने कोई ध्यान न दिया। गाड़ी छोड़नेपर सुबह चार बजे ही गाड़ी मिलती। पर मैं उसको

करुणाभरी आँखोंकी बेबसीकी उपेक्षा न कर सका। मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता रहा 'कि नाथ! इसके माता-पिता मिल जायँ। उसे लेकर मैं पुलिस-स्टेशनकी ओर चल दिया, वहाँ पहुँचनेपर उसके माता-पिता मिल गये जो कि बच्चेके बारेमें रिपोर्ट लिखवा रहे थे! वे वहींके रहनेवाले थे! मुझे उन्होंने बहुत धन्यवाद दिया।

अब मैं पुनः स्टेशनपर जा रहा था। गाड़ी तो मेरे सामने ही जा चुकी थी। मैं पुनः पुस्तकमें खो गया, इसी तरह कुछ घंटे बीत गये। सामनेसे दो कुली बातें कर रहे थे कि बनारसवाली गाड़ी लाइनसे उतर गयी। मेरी उत्सुकता बढ़ी। स्टेशन जाकर पूछा तो बात सच निकली। यह सुनते ही मेरी आँखोंके आगे वही मासूम सूरत आ गयी। यात्रियोंमेंसे बहुत जख्मी हुए और कोई क्षति नहीं हुई। पर उनकी परीशानीका पता सहज ही लगाया जा सकता था!

मैं अब सोचता हूँ कि मैंने बच्चेको बचाया या अपने-आपको। अगर मैं उसको वहीं छोड़ देता तो आगे क्या होता मैं सोच भी नहीं सकता! अब मैंने किसकी सहायता की, इसका आप ही अनुमान लगाइये।

—श्रीसुरेन्द्रकुमार जैन

(१०)

पिछड़ा कौन ?

पिछड़ेमें पिछड़े समझे जानेवाले इस गाँवमें मेरी शिक्षकके पदपर कुछ ही दिन हुए नियुक्ति हुई थी। इस गाँवमें केवल चालीस घरोंकी बस्ती थी। इनमेंसे पंद्रह घर पक्के यानी मिट्टीके थे, शेष पचीस घास-फूसके। गिरनेको तैयार खड़ा जीवित एक ठाकुरजीका जीर्ण मन्दिर था।

आज सबेरे जल्दी उठकर दँतुअन कर रहा था। इसी समय देखा कि गाँवके मुखिया गंगाभाईका लड़का धना और मुखीका लड़का देवा घर-घर घूमकर माँगकर झोलीमें कुछ इकट्ठा कर रहे थे। सुखी समझे जानेवाले मुखिया लोगोंके लड़के इस प्रकार क्या माँग रहे थे, यह जाननेकी तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। रास्ते जाते एक बच्चेको भेजकर मैंने गंगाभाईको बुलवाया। वे तुरंत ही आ गये।

मैंने उनसे पूछा—'सबेरे-सबेरे तुम्हारे ये जवान क्या माँगने निकले हैं?'

'महाशयजी! यह बात बतानेजैसी नहीं है।'

'क्यों?'

'यह बात ऐसी है कि जितनी ही प्रकट होती है, उतना ही अधिक दोष लगता है, इसलिये माफ करें।'

'बस, गंगाभाई! मुझपर तुम्हारा इतना ही विश्वास है?' मैं दयापात्र-सा होकर उनकी ओर देखता रहा।

गंगाभाईने मेरे मुखकी ओर देखकर कहा—'बुरी लगी मेरी बात महाशयजी? अच्छी बात है—आपको दुःख होता हो तो मुझे दोष ग्रहण करके भी आपको बात बतानी पड़ेगी।'

आठ वर्ष हुए इस गाँवका सर्वप्रिय शंभुभाई पाँच छोटे-छोटे बच्चे तथा जवान पत्नीको संसारमें निराधार छोड़कर टी० बी० के रोगसे चल बसा। 'ऊपर आकाश और नीचे धरती' की दशामें पड़े हुए इन छः प्राणियोंका हृदय विदीर्ण कर देनेवाला रुदन सुना नहीं जाता था। इनके करुण क्रन्दनको सुनकर सारा गाँव ही आँखोंसे आसुओंकी धारा बहाता हुआ रो उठा। सबके हृदयमें यह चिन्तानल जल रहा था कि बिना किसी आधारके यह स्त्री पाँच नन्हे-नन्हे बच्चोंको कैसे पाल-पोसकर बड़ा बनायेगी? इसका साहस जरूर ही टूट जायगा और दुःखका भार सहन न हो सकेगा तो यह अवश्य ही किसी कुएँ-तालाबकी शरण लेगी!

रात्रिको मन्दिरके चौकमें इसपर विचार करनेके लिये गाँव इकट्ठा हुआ। गाँवभरमें इन निराधारोंके प्रति अनुकम्पा तो भरी ही थी। अतः सबने सर्वसम्मतिसे निर्णय किया कि 'शंभुके बच्चे बड़े होकर स्वयं कमाने लग जायँ, तबतकके लिये इनका पालन-पोषण गाँव करे।' इस कार्यके लिये गाँवने यह व्यवस्थाकी कि किसीके सामने हाथ फैलानेमें इनको बुरा न लगे इसलिये गाँवके दो जवान प्रति सप्ताह शंभुके घर जाकर गंगासे पूछ लें कि उसको किस-किस वस्तुकी जरूरत है। अन्नकी जरूरत हो तो घर पीछे पाँच सेर अन्न इकट्ठा करके वे स्वयं ही शंभुके घर पहुँचा आयें। तेल या कपड़े-जैसी चीजकी जरूरत हो तो लुहाणा सेठकी दूकानसे गाँवके खाते नाम लिखाकर गंगा वह चीज ले आवे। क्या किया जाय महाशयजी! गाँवकी गरीब बस्ती दुखी हो तो दूसरे गाँवमें उसकी कैसी बेइज्जती हो और ऊपरवाला भगवान् भी उस गाँवसे रूठ जाय। इसका डर भी तो रखना चाहिये न? फिर इसमें हमलोग कोई नयी बात तो करते नहीं। यह तो गाँवका कर्तव्य है जिसे गाँवको पूरा करना ही चाहिये।'

पिछड़ेमें पिछड़े समझे जानेवाले, गाँवकी इस अपूर्व मानवताके दर्शनसे मेरा हृदय गाँवके चरणोंमें झुक गया। मैंने

गंगाभाईसे पूछा—'आप इस बातके कहनेमें हिचकते क्यों थे ? हम शिक्षित लोग तो कहीं दस-पाँच रुपये चन्दा देते हैं तो हमारा नाम अखबारोंमें छपे, ऐसी अपेक्षा रखते हैं और यदि कहीं किसी संस्थामें सौ दो सौ रुपये दान किये हों तब तो बड़े-बड़े अक्षरोंमें हमारे नामकी तख्ती वहाँ लगे, ऐसा आग्रह रखते हैं और आप इस बातको दूसरेसे कहनेमें भी दोष मानते हैं ?'

गंगाभाईने कहा—एक हाथसे दिये हुए दानका दूसरे हाथको पता लग जाय तो भी दोष लगता है; यों जो बात दूसरे हाथको भी नहीं बतायी जा सकती, तब फिर दूसरे मनुष्यको तो कैसे कही जा सकती है ?

इस बातको सुनकर मैं देरतक विचारता रहा कि हममें पिछड़े हुए कौन हैं ? हम हैं या ये हैं ? पढ़े-लिखे लोग हैं या ये बे-पढ़े लिखे ? कुछ समझमें नहीं आता । आप ही बताओ भाई ! पिछड़े हुए कौन हैं ? 'अखण्ड आनन्द'

—नबीभाई. रा.मनसूरी

(११)

मधुमेहकी एक अन्य अचूक दवा

आपके फरवरी ६६ के अङ्कमें मधुमेहकी दवा सहदेई-के बारेमें उल्लेख आया है । सहदेई ज्वरके लिये भी रामबाण ओषधि है, लेकिन सबको इसका मिलना कठिन है । इसलिये मैं मधुमेहके लिये अपना अनुभव कल्याणके पाठकोंके समक्ष रख रहा हूँ । मधुमेहके रोगियोंको चाहिये कि किसी मिट्टीके पात्रमें पावभर शुद्ध कुँआ या गङ्गाजल रातमें रख लें । इसी जलमें पलाशपुष्प पाँच नग जो हर जगह आसानीसे मिल जाता है, डाल लें । सुबह उस फूलको उसी जलमें मलकर छान लें और कुल एक बारमें बासी मुँह पी जावें । हर हफ्ते फूलकी मात्रा एक-एक करके बढ़ाते जावें । चार सप्ताहमें रोग निर्मूल हो जायगा । अनुराधा नक्षत्रमें तोड़े हुए पुष्पोंसे और भी शीघ्र लाभ होता है । जिन लोगोंको इस विषयमें और कुछ पूछ-ताँछ करनी हो, वे निम्नाङ्कित पतेपर कर सकते हैं । इस प्रयोगसे अन्य प्रकारके प्रमेहमें भी काफी लाभ होता है । मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह (सुजाक) तक रोग भी ठीक होते देखे गये हैं ।

अथर्ववेदमें भी इसे उत्तम ओषधि बताया गया है ।

डा० पन्नालाल गर्ग, अध्यक्ष
पलाश प्रयोगशाला, पीरपुर हाउस
लखनऊ (उ० प्र०)

श्रद्धाञ्जलि

कुछ दिनों पूर्व सनातन-धर्मके प्रकाण्ड वयोवृद्ध विद्वान्, प्रबल समर्थक, सफल वक्ता और महान् लेखक पूज्यपाद महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगिरधरजी शर्मा महाराजका काशीवास हो गया । सनातन-धर्मका एक देदीप्यमान प्रबल प्रतापी सूर्य अस्त हो गया । आप महान् विद्वान् होनेपर भी बड़े विनीत और मधुरभाषी थे । विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मणत्वके मूर्तिमान् स्वरूप थे । भारतीय संस्कृतिके महान् मर्मज्ञ और प्रचारक थे । आपके शरीरपातसे सनातन-धर्म जगत्की, संस्कृतके विशाल क्षेत्रकी कभी पूर्ण न होनेवाली कितनी भयानक क्षति हुई है, यह कहना सम्भव नहीं है । 'कल्याण' तथा 'गीताप्रेस'के प्रति आपका विलक्षण ममत्व था और इन्हें आपका नित्य आशीर्वाद प्राप्त था । 'कल्याण'में समय-समयपर आपके अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं । कई बार आपने गीताप्रेसमें गोरखपुर पधारनेकी भी कृपा की थी । मुझ नगण्यपर तो आपका आदर्श वात्सल्य था । कितना स्नेह करते थे । पिछले दिनों आपकी रुग्णावस्थामें मैं दर्शन करने गया था तो लेटे-लेटे बड़ी धीमी ध्वनिसे मुझे कितने आशीर्वाद दिया । कितना स्नेह प्रदान किया । मैं कह नहीं सकता । समस्त विश्वमें आपकी जोड़ीके संस्कृतके विद्वान् तथा भारतीय सनातन-धर्म तथा संस्कृतिके मर्मज्ञ वक्ता और लेखक विरले ही हैं । आपके देह-त्यागसे समस्त विश्वकी ही हानि हुई है, परंतु सनातन-धर्मका तो एक आधार ही नष्ट हो गया । हमलोगोंकी व्यक्तिगत जो हानि हुई है, वह भी अकथनीय है । अवश्य ही वे मुक्तात्मा थे, उनके लिये दुःखका कारण नहीं है । मैं आज श्रद्धापूत हृदयसे उनके श्रीचरणोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत (सचित्र, सरल हिंदी-अनुवादसहित)

सम्पूर्ण ग्रन्थ छः खण्डोंमें पूरा हुआ है। आकार २२×३० आठ पेजी

(द्वितीय खण्ड बहुत दिनोंसे अप्राप्त था, जिसके कारण पूरा सेट एक साथ लेनेवाले सज्जन रुके हुए थे। अब द्वितीय खण्ड छप गया है, अतः जिन्हें लेना हो तो वे तुरंत मँगवा सकते हैं।)

प्रथम खण्ड—आदि और सभापर्व, रंगीन चित्र ९, सादे ४०, लाइनचित्र १०८, पृष्ठ-संख्या ९२६, कपड़ेकी जिल्द १३.२५

द्वितीय खण्ड—वन और विराटपर्व, रंगीन चित्र १२, सादे ४०, लाइनचित्र २१४, पृष्ठ-संख्या १११०, कपड़ेकी जिल्द १५.००

तृतीय खण्ड—उद्योग और भीष्मपर्व, चित्र रंगीन २३, सादे ३६, लाइनचित्र ८०, पृष्ठ-संख्या १०७६, कपड़ेकी जिल्द १५.००

चतुर्थ खण्ड—द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व, चित्र रंगीन १३, सादे ३१, लाइनचित्र ९१, पृष्ठ-संख्या १३४६, कपड़ेकी जिल्द १८.००

पञ्चम खण्ड—शान्तिपर्व, चित्र रंगीन १०, सादे ३१, लाइनचित्र १६, पृष्ठ-संख्या १०१४, कपड़ेकी जिल्द १३.७५

षष्ठ खण्ड—अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व, चित्र रंगीन१२, सादे ३८, लाइनचित्र ५५, पृष्ठ-संख्या १११२, कपड़ेकी जिल्द ... १५.००

सम्पूर्ण ग्रन्थका मूल्य ९० रुपया, कमीशन १५) सैकड़ाकी दरसे १३)५० बाद तथा रजिस्ट्री-खर्च ७० पैसा, कुल ७७)२० लगता है। मँगवानेवाले निकटस्थ रेलवे स्टेशनका नाम स्पष्ट लिखनेकी कृपा करेंगे।

एक नयी पुस्तक ! प्रकाशित हो गयी !!

आत्मोद्धारके सरल उपाय

लेखक—ब्र० श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २६८, मुरलीमनोहरका सुन्दर तिरंगा चित्र, मू० ७५ पैसे। डाकखर्च ८५ पैसे। कुल १.६०।

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजीके पिछले दिनों 'कल्याण' में प्रकाशित लेखोंका यह संग्रह पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया गया है। १७ अप्रैल १९६५में भगवती भागीरथीके पुनीत तटपर उनके देह त्यागकर ब्रह्मलीन हो जानेके पहले जितने लेख वे 'कल्याण'के लिये दे गये थे, उन सबका इस पुस्तकमें समावेश है।

श्रीगोयन्दकाजीके सिद्धान्तों, उपदेशों तथा वचनोंसे लाखों-लाखों नर-नारी आध्यात्मिक लाभ उठा चुके हैं और उठा रहे हैं। उनका यह अन्तिम ग्रन्थ उन सबके लिये विशेष लाभदायक हो सकेगा, ऐसी आशा है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

श्रीगीता-रामायणकी आगामी परीक्षाएँ

आगामी गीता-परीक्षाएँ दि० २०,२१ नवम्बर १९६६ को तथा रामायण-परीक्षाएँ दि० ८,९ जनवरी १९६७ को होनेवाली हैं। नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थनापत्र दि० ३० अगस्ततक भेज देने चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पो० स्वर्गाश्रम (देहरादून)**

सम्पूर्णरूपसे गोरक्षा आवश्यक

[आस्तिक जनतासे पुनः अपील]

'कल्याण'के गताङ्कमें भारतकी आस्तिक जनतासे अपील की गयी थी कि समस्त भारतमें पूर्णरूपसे गोवध बंद होनेका कानून शीघ्र बने, इसके लिये सरकारको सद्बुद्धि प्राप्त हो, जनतामें गोरक्षाके लिये त्याग और बलिदानकी भावना जाग्रत हो, आन्दोलनमें शुद्ध प्रबलताका उदय हो तथा भारतका जन-जन गोरक्षाके लिये पुकार उठे, तदर्थ अपने-अपने धर्म तथा विश्वासके अनुसार भगवान्‌की आराधना की जाय, दैवी अनुष्ठान किये जायँ, भगवन्नाम-संकीर्तन-जप आदि हों, यज्ञादि किये जायँ, भगवत्-प्रार्थना की जाय। हर्षका विषय है कि देशकी जनताने भगवदाराधनाका पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया है। मेरे पास कई संस्थाओंके तथा व्यक्तिगत पत्र भी आये हैं और आ रहे हैं, जिनमें विभिन्न प्रकारसे भगवदाराधना तथा दैवी अनुष्ठानोंके प्रारम्भ करनेके शुभ संदेश हैं। पर अभीतक यह कार्य देशव्यापी नहीं हो पाया है। इसलिये पुनः आस्तिक जनतामात्रसे तथा संस्थाओंसे सादर अनुरोध किया जाता है कि वे शीघ्रातिशीघ्र नगर-नगर, गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले तथा घर-घरमें भगवदाराधन तथा दैवी अनुष्ठानोंका कार्य प्रारम्भ कर दें और उसकी सूचना मेरे नाम 'कल्याण-कार्यालय' गोरखपुरको भेजते रहें।

एक अखिल भारतीय सर्वदलीय गोरक्षा-समिति बनने जा रही है—जिसमें सभी प्रान्तोंके विभिन्न सम्प्रदायोंके तथा मतोंके बड़े-बड़े आचार्य, महात्मागण, नेतागण सम्मिलित होंगे। मेरी सब महानुभावोंसे यह विनीत प्रार्थना है कि सब महानुभाव इस विषयमें एकमत होकर एक सङ्गठनके द्वारा एक आवाज उठावें। अलग-अलग करनेपर शक्ति बिखर जायगी।

मेरे पास ऐसे व्यक्तिगत पत्र भी आ रहे हैं, जो आमरण या समयकी अवधिसे अनशनव्रत करने तथा सत्याग्रह आदि हों तो उसमें भाग लेनेको प्रस्तुत हैं। यह बहुत संतोषकी बात है। ऐसे लोग उत्साहपूर्वक तैयार रहें और इसकी सूचना 'भारत गोसेवक-समाज', ३ सदर थाना रोड, दिल्ली ६ को भेज दें।

इस समय गोरक्षाके लिये देशभरके सभी वर्गोंमें उत्साह, एकता तथा त्यागकी भावना प्रबल होनी चाहिये, जिससे सुव्यवस्थितरूपसे सफल चेष्टा हो सके।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार